www.amanjari.com

मंजरी

स्त्री के मन की

मुहाने पर जीवन

Sulabh Sanitation Movement

Sulabh International
Social Service Organisation

सुधा
मिल्क एवं मिल्क प्रोडक्ट्स
वादा शुद्धता का

3 दशकों में बिहार के डेयरी क्षेत्र में नये युग के उदय की अनकही कहानी

बिहार स्टेट मिल्क को–ओपरेटिव फेडरेशन लिमिटेड (कॉम्फेड) को आपरेशन फ्लड के कार्यान्वयन एजेंसी के तौर पर 1983 में स्थापित किया गया था, जिसका उद्देश्य एक परिवर्तनकारी प्रक्रिया शुरू करना और उपभोक्ताओं को उचित मूल्य पर डेयरी उत्पाद उपलब्ध कराना था। ग्राहकों को गुणवत्तापूर्ण दूध और दुग्ध उत्पाद उपलब्ध कराने के साथ–साथ बिहार में आत्मनिर्भरता लाने तथा सक्रिय ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करना भी इसके उद्देश्यों में शामिल था। कॉम्फेड 22971 ग्राम स्तरीय दुग्ध सहकारी समितियों के 12 लाख दूध उत्पादकों से औसतन 20 लाख किलो दूध प्रति दिन संग्रह कर भारत के मिल्क को–ओपरेटिवों में 6ठे स्थान पर है।

कॉम्फेड की सफलता सुदृढ़ तकनीकी ज्ञान से युक्त कार्यक्रम पर आधारित है, जिसका लक्ष्य पशुओं को उचित भोजन, कृत्रिम गर्भाधान एवं उत्पादकता में बढ़ोतरी और बेहतर स्वास्थ्य के माध्यम से दूध उत्पादन की लागत में कमी लाना है।

"सुधा" ब्रांड के अंतर्गत, (कॉम्फेड) ने बिहार, झारखण्ड, उत्तर पूर्व, पश्चिम बंगाल तथा दिल्ली–एनसीआर के बाजार में दूध एवं दुग्ध उत्पाद उपलब्ध करा रहा है।

38 वर्षों में
8 दूध संघ
का संगठन

12 लाख दूध उत्पादकों से
प्रतिदिन लगभग 20 लाख
लीटर दूध का संग्रहण

आंगडवाड़ी केन्द्रों के
माध्यम से 38 लाख बच्चों
को दूध की उपलब्धता

22971 दुग्ध
सहकारी समितियाँ
15000 सदस्यों को
प्रति वर्ष प्रशिक्षण

136 पैक साइज़ सहित लगभग
47 किस्मों के दूध एवं दुग्ध उत्पाद
एवं लगभग 24,459 रिटेल नेटवर्क
का गठन

COMFED

बिहार स्टेट मिल्क को–ऑपरेटिव फेडरेशन लि.

पीओ–बी.पी. कॉलोनी, पटना–600 004, बिहार, इंडिया ई–मेल: comfed.patna@gmail.com
टोल फ्री नं.: 18003456199 | www.sudha.coop

संकल्पना

इक्विटी फाउंडेशन लंबे अरसे से एक वेब पत्रिका शुरू करने के बारे में सोच रहा था। मकसद था महिला और समाज के मुद्दों को शिद्दत से उठाना। जब हमने चीजों को एक साथ कर उसे पत्रिका के रूप में सजाने के बारे में सोचना शुरू किया तो इस क्रम में कई लोगों से जुड़े। हमने महिलाओं को पत्रिका से जोड़ने की कोशिश की। हम दोस्तों से मिले और परिचितों से बात की। महिलाओं के सामाजिक समूहों और शिक्षाविदों के एक साथ जुड़ने के बाद जो स्वरूप सामने आया वह है 'मंजरी'।

मंजरी यानी कोंपल। शाखों में फूटने वाली नन्ही पत्तियां। नई शाखों का सृजन करने वाले इन कोंपल को कुम्हलाने से बचाना जरूरी है नहीं तो पूरे पेड़ का विस्तार कुंद हो जाएगा। ठीक उसी तरह स्त्री के मन की मंजरी को सहेजने की जरूरत है वरना पेड़रूपी समाज विकृति का शिकार हो जाएगा। हमारा प्रयास इसी मंजरी को पुष्पित पल्लिवत करने का है जो औरत की सोच और उसकी कोशिश को सही दिशा प्रदान कर सके।

मंजरी के सृजन के दौरान पहले तो 10–30 लोगों का एक ढीला–ढाला समूह बना। विचार आते गए। अलग–अलग विषयों और मुद्दों पर। समूह में कुछ अनमनी महिलाएं थीं तो कुछ सहानुभूति दिखाने वाले पुरुष भी। कुछ महज एक या दो बैठकों में शामिल हुए तो कुछ जब मन में आया, आ गए। बाकी बचे लोगों ने 'मंजरी' को मुकाम पर ले जाने का दायित्व अपने कंधों पर लिया। 'मंजरी' का लक्ष्य एक ऐसा मंच उपलब्ध कराना है जहां बुद्धिजीवियों को उनकी खुराक मिले तो शोधकर्ताओं की जिज्ञासा शांत हो। क्रियान्वयन के लिए बहस और तर्क के रास्ते हमेशा खुले रहें। इक्विटी की लगातार कोशिश रही है शोध और क्रियान्वयन के बीच की दूरी को पाटना। ऐसे में हमारा मानना है कि शोध तब तक अप्रासंगिक हैं जब तक कि इनका लोगों की जिंदगी और उनके क्रियाकलापों से जुड़ाव न हो। ठीक इसी तरह सिविल सोसायटी के तौर पर अगर हम जमीनी सच्चाई से वाकिफ न रहें, जिनमें सामाजिक प्रक्रियाएं और ऐतिहासिक मूल्यों का समावेश है और जो समाज में रहने वाले लोगों के मूल्यों और उनके चरित्र को आकार देते हैं, तो किसी भी कोशिश का कोई मतलब नहीं रहता है।

'मंजरी' एक उद्यम है, क्रियाशीलता को शोध आधारित रचना और आलोचना के नजरिये से देखने का जो महिला अधिकारों के साथ–साथ जीवन के हर पलू को इंगित करे। नियमित गैर सरकारी संगठनों और अकादमिक तंत्रों से इतर 'मंजरी' राजनीति और आदर्शवादिता को लांघ कर सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक सुधारों को सांस्कृतिक संवे. दनशीलता के आधार पर मापती है। 'मंजरी' उन तमाम कार्यकर्ताओं, विद्वानों, शिक्षाविदों, पत्रकारों, प्रोफेशनल, गृहणियों और नीति निर्धारकों द्वारा पढ़ी जाएगी जो किसी समस्या के लिए समाधान आधारित नवीन दृष्टि और पृथक सोच रखते हैं। यह पत्रिका अपने पाठकों को जेंडर आधारित मुद्दों को जैविक और सामाजिक आधार पर परखने की छूट देती है। व्यक्ति और समाज की विचारधारा में जेंडर को लेकर क्या बदलाव आये और उनका क्या असर हुआ, इसकी पूरी पड़ताल करने की आजादी लोगों को होगी। यह पत्रिका एक कोशिश है पड़ताल की प्रवृत्ति को जगाने की ताकि लोग तेजी से बदलते और विविधताओं से भरे समाज में पूरी क्षमता से काम करने को तैयार हो सकें जिसमें महिलाओं के प्रति भेदभाव भी एक अहम मुद्दा होगा। महिला समानता और अधिकारों पर 'मंजरी' के दखल से उन बेशुमार कार्यकर्ताओं, संगठनों और विद्वजनों को फायदा होगा जो दहेज, यौन प्रताड़ना, महिला अधिकारों, महिला आरक्षण, आर्थिक सुधार और अल्पसंख्यक समुदायों के निजी कानूनों में रुचि रखते हैं।

पत्रिका का मकसद

इक्विटी फांडेशन खुद को सुविधाविहीन महिलाओं को उनकी पूर्ण क्षमता से अवगत कराने और समाज में उनके क्रियाशील प्रभुत्व को स्थापित कराने की दिशा में वाहक के तौर पर देखता है। देश के विकास के हर क्षेत्र में महिलाओं की समान भागीदारी की राष्ट्रीय नीति तभी सफल हो पाएगी जब महिलाओं की भूमिका और उनके योगदान को कमतर आंकने वाले संस्थान और विचारों को हतोत्साति किया जाये या उनका पूरी तरह सफाया किया जाय। 'मंजरी' की परिकल्पना समाज और अर्थव्यवस्था में महिलाओं के जीवन और उनके स्तर को प्रभावित करने वाले विचारों के निर्माण, विकास और उनके प्रसार के लिए की गई है। बारहवीं पंचवर्षीय योजना के परिप्रेक्ष्य में समानता संबंधी मुद्दों को इस प्रकार समग्र रूप में देखने की जरूरत है जो असमानता की अंतरवर्गीय विशेषताओं को जाहिर कर सके। समानता पर आधारित 'मंजरी' के ज्यादातर आलेख भिन्न–भिन्न समूहों को निशाने पर रखते हैं जो कुछ हद तक बेद जरूरी भी है। इसलिए यह पत्रिका कुछ समूहों के कुछ विशेषाधिकारों के पूर्ण निष्कासन और अंतरवर्गीय दृष्टिकोणों के स्थापन के बीच नियंत्रक की भूमिका में होगी जो नीति निर्धारण और योजनाओं के क्रियान्वयन के दौरान असमानता को उसके तमाम स्वरूपों के साथ सामने रखने में कारगर होगी। ऐसे में इसका मकसद लैंगिक भेदभाव के निर्मूलन की ओर वह विवेचनात्मक चर्चा छेड़ने का है जो वर्तमान परिदृश्य में शोधों का एजेंडा तय कर सके और एक बेहतर वैकल्पिक प्रस्ताव का सृजन कर सके। अब तक यह संगठन कार्यशाला, कांफ्रेंस और अन्य सार्वजनिक आयोजनों के जरिये अपनी प्रतिबद्धता दर्शाता रहा है लेकिन अब इस पत्रिका के माध्यम से यह क्षेत्रीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय अतिथि लेखकों, जिनमें विद्वजन, अधिवक्ता, सरकार, पत्रकार, फिल्म निर्माता, कवि और सामाजिक कार्यकर्ता हैं, को जोड़ने की कोशिश कर रहा है।

नमन

श्रद्धांजलि

24 अप्रैल 1946–25 सितम्बर 2021

''तोड़–तोड़ के बंधन को देखो बहनें आती हैं...
आएंगी जुल्म मिटाएंगी...
ये तो नया जमाना लाएंगी''

उनमें करूणा थी, प्रेम था। हर स्त्री के लिए। विद्वता के अहंकार से परे, अंग्रेजियत के अभिमान से मुक्त, वह बहुत सहज थीं। ऐसी थीं हम सबकी चहेती 'कमला दी'। 'मंजरी' ने कमला दी के उस रूप को देखा था, सीखा था और अपने हर अंक में उसे दर्शाने का भी प्रयास किया था। हमारी पूरी टीम को उनका मार्गदर्शन हर वक्त मिलता रहा तो ये हमारे लिए किसी उपलब्धि से कम नहीं था। जिन्होंने अपना पूरा जीवन स्त्री संघर्ष के लिए बलिदान कर दिया हो, वे हमारी पत्रिका के लिए समय निकालतीं, हर अंक को देखतीं और फिर उस पर टिप्पणी करतीं, तो इसपर हमारा इतराना वाजिब ही था।

कद–काठी साधारण लेकिन व्यक्तित्व असाधारण था कमला दी का। मुंह से अगर एक बोल भी निकलते तो वो नारी शक्ति के हित में होते। स्त्री की आजादी, स्वाभिमान और दुनिया भर की लानतों से उनकी मुक्ति के लिए होता। और ये सब केवल उनकी वाणी में ही नहीं बल्कि व्यवहार में भी स्पष्ट दिखाई देता था। तभी तो उदयपुर में उन्हें लोग मोटरसाइकिल वाली के नाम से पहचानते थे। 60 के दशक में एक लड़की का मोटरसाइकिल चलाना उसके साहस और लोगों के कौतूहल का विषय था।

कमला दी ने 'मंजरी' की सार्थकता में नए आयाम जोड़े थे। नए विषयों और हर विषय के नए पहलू को देखने के लिए उत्साहित किया था। पत्रिका की संपादक होने के नाते उनके लिखे लेखों और कविताओं को पढ़ना, उनका अनुवाद करना मेरे लिए किसी डिग्री को हासिल करने जैसा था। वे अपने आप में एक गुरुकुल थीं जहां से आप जितना और जब तक चाहें, सीख सकते थे। 'मंजरी' के 12वें अंक में उनका एक आलेख था, ''उभरती और बढ़ती हुईं श्रवण कुमारियां'', जो एक तरह से खुद उनके जीवन का ही प्रतिबिंब था। कैसे अपने भाइयों के होते हुए भी उन्होंने अपनी मां की सेवा की और परिवार में होने वाली 'खटपट' का बहाना बनाकर अपनी जिम्मेदारियों से मुंह नहीं मोड़ा। एक श्रवण कुमारी होने के अपने दायित्व को उन्होंने पूरा किया, और 'लोग क्या कहेंगे' के मिथक को तोड़कर साबित किया कि लोग कुछ नहीं कहते हैं बल्कि हम अपनी कमजोरियों को छुपाने के लिए लोगों को बीच में ले आते हैं। उन्होंने लिखा था, ''मैंने आज तक कोई ऐसा किसान नहीं देखा या देखी जो अपनी आधी जमीन पर पूरा ध्यान दे और आधी पर न दे। तो फिर माँ–बाप ऐसा कैसे कर सकते हैं। यह तो अपने पाँव पर खुद कुल्हाड़ी मारने वाली बात है। अगर बेटे–बेटी दोनों की समान परवरिश हो, दोनों को समान सुविधाएं और अवसर दिए जाएं, दोनों को उनकी पसंद और काबिलियत के हिसाब से शिक्षा दी जाए तो दोनों फले–फूलेंगे। अगर बेटा माँ–बाप के काम धंधे को नहीं संभालना चाहता तो बेटी संभाल लेगी। अगर बेटा निकम्मा निकल जाता है या उसे कुछ हो जाता है तो बेटी है न बुढ़ापे की लाठी या सहारा बनने को। माँ–बाप और परिवार के विकल्प भी दुगने हो जायेंगे।'' यही संदेश उन्होंने 'मंजरी' के 11वें अंक के अपने अतिथि संपादक कॉलम के आलेख में भी दिया। ''माफ कीजिए श्रीमान! कहां हैं आपकी बेटियां'', में उन्होंने लिखा कि केवल अपने देश में ही नहीं बल्कि अमेरिका और ब्रिटेन जैसे विकसित देशों में भी लड़कियों की दशा कमोबेस एक सी ही है। उन्होंने लिखा, ''यहां तक कि 200 साल के लोकतंत्र के बाद भी अमेरिका में एक भी महिला राष्ट्रपति नहीं हुई। राजनीतिक घरानों के उत्तराधिकार भी पिता से बेटों तक गए, बेटियों तक नहीं। बुश सीनियर, बुश जूनियर, केनेडी सीनियर, केनेडी जूनियर। माफ कीजियेगा, आपकी बेटियां कहां हैं श्रीमान?'' कमला दी ने अंग्रेजी में लिखे अपने इस आलेख के मेरे अनुवाद को बहुत पसंद किया था। उन्होंने मुझे और पत्रिका की पूरी टीम को प्रोत्साहित किया कि हम विषयों पर शोध के साथ–साथ उनकी निष्पक्षता और गुणवत्ता को हमेशा बनाए रखें। इक्विटी फाउंडेशन में हम सबके साथ खुलकर मिलना, बातें करना, गाना–बजाना और साथ मिलकर खाना, ये सब हमारे जीवन की अभिन्न यादें हैं अब। लिट्टी में अलग से घी डालकर खाने और उसके स्वाद में खो जाने की आपकी बालपन सी सादगी को भला कैसे भूल सकते हैं हम।

प्रिय कमला दी, आप चाहें आज हमारे बीच न हों मगर आपकी जीवनी हम सबमें हमेशा ऊर्जा का संचार करती रहेंगी। मृत्यु ने आपको नहीं, बल्कि आपने मृत्यु को पराजित किया है, क्योंकि अपनी कविताओं, किताबों, नारों और कर्म से आप युगों तक हर नारीवादी आंदोलन में, हर पीड़ित स्त्री की बुलंद होती आवाज में और हर बड़ी होती लड़की के अपने अधिकारों के प्रति सचेतनता में जीती रहेंगी। 'मंजरी' की पूरी टीम की तरफ से आपको शत–शत नमन।

दीपिका झा
संपादक, मंजरी

संपादकीय

संरक्षण

पद्मश्री डा. उषा किरण खान
प्रख्यात लेखिका एवं साहित्यकार

मणिकांत ठाकुर
प्रख्यात पत्रकार

प्रो. भारती एस. कुमार
प्रोफेसर (सेवा.) इतिहास, पटना विवि

डा. रेणु रंजन
प्रोफेसर (सेवा.), समाज शास्त्र पटना विवि

प्रो. डेजी नारायण
प्रोफेसर, इतिहास, पटना विवि

परामर्श

मनीष कुमार
ब्यूरो चीफ, एन.डी.टी.वी. बिहार

कीर्ति
नेशनल कोऑर्डिनेटर, कैरीटास स्विट्जरलैंड (CARITAS Switzerland)

डा. शरद कुमारी
सचिव, बिहार महिला समाज

अंजिता सिन्हा
पत्रकार

डा. मधुरिमा राज
लेखिका

कहते हैं अगर यह देखना हो कि कोई समाज या राष्ट्र तरक्की कर रहा है या नहीं, तो उस समाज या राष्ट्र में औरत की स्थिति को देख लेना चाहिए, समाज या राष्ट्र की स्थिति का पता चल जाएगा और यह बात सही भी है। कोई भी समाज अपनी महिलाओं को हाशिये पर रख कभी आगे नहीं बढ़ सका है। एक समय था जब भारत में औरतों की स्थिति वर्तमान से कहीं बेहतर थी। जहाँ वह अपने वर चुनने के लिए स्वयंवर रचाती थी। जहाँ वह पुरुषों के साथ युद्धों में भाग लेती थी। उसे शास्त्रार्थ में पराजित करती थी। यह देश मैत्रेयी, गार्गी, विद्योतमा, रानी लक्ष्मीबाई का देश था। आधुनिक युग का सबसे बड़ा संकट तो यही है कि यह युग जितना विकसित होता जा रहा है, महिलाएं उतनी ही हाशिये पर धकेल दी जा रही हैं। हम इसकी एक बानगी इस पत्रिका के माध्यम से देने की कोशिश कर रहे हैं।

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो। विश्वास रजत नग पग तल में।
पीयूष स्रोत सी बहा करो। जीवन के सुंदर समतल में।'

हिंदी के महाकवि जयशंकर प्रसाद की ये पंक्तियाँ जिस नारी की छवि हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं, वो शायद ही हमारे तथाकथित आधुनिक समाज में कहीं दिखाई दे।
देश में औरत अगर बेआबरू नाशाद है, दिल पे रखकर हाथ कहिए देश क्या आज़ाद है?

अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार पूरी दुनिया में 41 करोड़ मर्दों की तुलना में 606 करोड़ औरतें पूरे समय घर के काम, बच्चों की देखभाल, बुजुर्गों की सेवा आदि कार्य करती हैं, जिसके बदले उन्हें कोई वेतन नहीं मिलता है। महिलाओं से सेवा, देखभाल और गृह कार्य मुफ्त में करवाया जाना ऐतिहासिक है और इस पर एक लम्बी बहस और विरोध बरसों से जारी है। जहाँ एक ओर लैंगिक असमानता की उपस्थिति को नकारने वाले हैं, तो वहीं इसे ईश्वर प्रदत्त बताने वालों की भी कमी नहीं है।

संसाधनों या कार्यों के बंटवारे को अगर मौद्रिक मूल्य की दृष्टि से तौला जाए तो अधिक मौद्रिक मूल्य वाले सभी संसाधन पुरुषों के हिस्से में हैं। महिलाओं एवं अन्य लिंगों के मनुष्यों को उन कार्यों में लिप्त रखा गया जिनका मौद्रिक मूल्य बहुत कम था या मौद्रिक मूल्य था ही नहीं अथवा यूँ कहें कि जब उनसे कार्य करवाए गए तब उसका मूल्य बेहद कम आँका गया या मूल्य आँका ही नहीं गया। इसे एक उदाहरण से समझते हैं– घर के काम, जैसे खाना पकाना, कपड़े धोना, बर्तन, साफ़–सफाई, बुजुर्गों और बीमारों की सेवा आदि अवैतनिक रूप से करना महिला की जिम्मेदारी तय की गयी। आम तौर पर पुरुष यह काम घर पर नहीं करते जिसकी तस्दीक अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सहित कई संगठन कर चुके हैं। यही काम जब व्यावसायिक स्तर पर किया जाता है, यानि जब इसका मौद्रिक मूल्य मिलता है तब पुरुष न सिर्फ ये सभी काम आपको करते नजर आयेंगें बल्कि पारम्परिक रूप से स्त्रियोचित घोषित इस कार्य में पुरुष स्त्रियों से अधिक संख्या में अधिक वेतन या पारिश्रमिक के साथ प्रबल रूप से उपस्थित हैं।

स्कूल, दफ्तर, सोशल मीडिया पर चंद महिलाओं की उपस्थिति, लैंगिक समानता को मापने या असमानता को नकारने का कोई आधार नहीं है। आर्थिक भागीदारी और अवसर, शैक्षिक उपलब्धि, स्वास्थ्य और उत्तरजीविता, और राजनीतिक अधिकारिता, ये चार प्रमुख आयाम वैश्विक लैंगिक असमानता को मापने के लिये तय किये गए हैं। वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम की वैश्विक जेंडर गैप रिपोर्ट 2021 के अनुसार, 156 देशों से लिए गए डेटा ये साबित करते हैं कि शिक्षा, स्वास्थ्य और उत्तरजीविता में लैंगिक असमानता बेहद कम होने और प्रशिक्षित महिलाओं की संख्या बढ़ने के बावजूद महिला और पुरुष के बीच आमदनी का बड़ा अंतर है। कम आमदनी

हमारी बात

मुख्य संपादक

नीना श्रीवास्तव

संपादक

दीपिका झा

शोध

नीना श्रीवास्तव
दीपिका झा

लोगो डिजाइन

दीया भारद्वाज

प्रबंधन/व्यवस्था

राहुल कुमार

प्रकाशन

इक्विटी फाउंडेशन

संपर्क

इक्विटी फाउंडेशन
123 ए, पाटलीपुत्र कॉलोनी
पटना, 13
फोन : **0612-2270171**

ई–मेल
equityasia@gmail.com
वेबसाइट
www.emanjari.com

© इक्विटी फाउंडेशन

वाले कामों में महिलाओं की संख्या अधिक है जबकि अधिक आमदनी वाले काम पुरुषों के हिस्से ज्यादा आये हैं।

वर्ल्ड इकोनॉमिक फोरम की वैश्विक जेंडर गैप रिपोर्ट 2021 के अनुसार पूरे विश्व में 64 करोड़ महिलाओं का रोजगार महामारी की भेंट चढ़ गया है। महामारी ने लैंगिक असमानता और अर्थव्यस्था दोनों को बेहद चिंताजनक स्थिति में ला दिया है। आर्थिक भागीदारी, आर्थिक अवसर और राजनैतिक अधिकारिता में महिलाओं के पिछड़ते जाने से लैंगिक समानता को पाटने का सपना पूरा होने में अब 195 वर्ष से भी अधिक का समय लग जाएगा। जिसका अर्थ है कि अभी भविष्य की कई पीढ़ियों को इन्हीं हालातों से गुजरना होगा।

भारतीय राजनीति में वर्षों से पुरुषों का ही वर्चस्व रहा है। भारत की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम होने के पीछे अब तक समाज में पितृसत्तात्मक ढांचे का होना भी है। राजनीतिक दलों के भेदभावपूर्ण रवैये के बावजूद मतदाता के रूप में महिलाओं की भागीदारी 90 के दशक से बड़े पैमाने पर बढ़ी है। स्वंत्रतता के छह दशक बाद भी इसमें असमानता आज भी किसी न किसी रूप में देखने को मिल ही जाती है। चुनाव में कितनी प्रतिशत महिलाओं को टिकट दिया जाता है, क्यों महिलाएं समाज की मुख्यधारा से आज भी वंचित है, क्यों महिला आरक्षण बिल अभी पास नहीं हुआ है,जैसे कई सवालों को लिए महिलाएं आज भी अपने हक की लड़ाई को घर से लेकर बाहर तक लड़ रही हैं।

भारत गांवों का देश है, भारतीय महिलाएं शुरुआती दौर से सम्मान की पात्र रही हैं। मगर समाज में इनके हाशिए पर होने की बात से भी इंकार नहीं किया जा सकता है। भारत की आधी आबादी का एक बहुत बड़ा भाग अभी भी अपनी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित है। महिलाओं को विकास की मुख्य धारा से जोड़ने की जरूरत है। हालांकि ऐसी बात नहीं है कि इस पर काम नहीं हो रहा है, मगर जिस स्तर पर काम होना चाहिए उस स्तर पर नहीं हो रहा है।

भारतीय राजनीति में वर्षों से पुरुषों का ही वर्चस्व रहा है। भारत की राजनीति में महिलाओं की भागीदारी कम होने के पीछे अब तक समाज में पितृसत्तात्मक ढांचे का होना भी कारण है। राजनीतिक दलों के भेदभावपूर्ण रवैये के बावजूद मतदाता के रूप में महिलाओं की भागीदारी 90 के दशक से बड़े पैमाने पर बढ़ी है, लेकिन स्वतंत्रता के छह दशक बाद भी इसमें असमानता आज भी किसी न किसी रूप में देखने को जरूर मिल ही जाती है। क्यों महिलाएं समाज की मुख्य धारा से आज भी वंचित है, क्यों महिला आरक्षण बिल अभी पास नहीं हुआ है, जैसे कई सवालों के लिए महिलाएं आज भी अपने हक की लड़ाई को घर से लेकर बाहर तक लड़ रही हैं।

भारतीय विकास नारीवादी कार्यकर्ता, कवयित्री, लेखिका तथा सामाजिक विज्ञानी स्वर्गीय कमला भसीन ने क्या खूब कहा था– "परिवर्तन की राह आसान नहीं है लेकिन नामुमकिन भी नहीं। अगर हम चाहते हैं कि समाज और देश बदले तो पहले हमें अपने घर से ही बदलाव करना होगा। पितृसत्ता में बेटियों को अंतिम संस्कार नहीं करने दिया जाता, मगर पितृसत्ता का अंतिम संस्कार हम पूरे ज़ोर–शोर से, बराबरी पसन्द पुरुषों के साथ मिल कर करेंगी और भारत के संविधान का जश्न मनाएँगी। महिलाओं को हाशिए पर रख समाज आगे नहीं बढ़ सकता।"

मंजरी का हमारा अट्ठारहवा अंक 'मुहाने पर जीवन' अपनी आबादी के आधे हिस्से यानी महिलाओं की स्थिति सुधारने की ओर एक सार्थक प्रयास है।

Nsrivastava

नीना श्रीवास्तव

थीम पेपर

क्यों मुकर जाती हैं रेप पीड़िताएं

बलात्कार पीड़िताएं अपने आरोपों से मुकर क्यों जाती हैं, ये एक चिंता का विषय है। अगर बलात्कार के दोषी लोग निडर होकर समाज में घूम रहे हैं तो महिलाओं की सुरक्षा एक अतिरिक्त जिम्मेदारी बन जाती है, बता रही हैं रश्मि सहगल।

रश्मि सहगल

(लेखिका का पत्रकारिता में वर्षों का अनुभव रहा है और वे टाइम्स ऑफ इंडिया और इंडिया पोस्ट जैसे अखबारों में काम कर चुकी हैं। उन्होंने करगिल युद्ध और बाबरी मस्जिद विध्वंस मामलों की रिपोर्टिंग की है)

23 साल की एलएलएम छात्रा ने शाहजहांपुर में अपने कॉलेज के प्रिंसिपल के खिलाफ रेप के आरोप लगाए थे। आखिर वो ऐसा क्यों करेगी जबकि उसे पता है कि वह व्यक्ति उस पूरे शहर में सबसे ताकतवर इंसान है? उसके पास अपने साथ हुए यौनाचार की पुष्टि करने वाले 42 वीडियो क्लिप मौजूद हैं जो इस बात को प्रमाणित कर सकते हैं कि वो कोई झूठे आरोप नहीं लगा रही थी। और फिर भी एक साल के बाद, एलएलएम की वह छात्रा लखनऊ में एमपी/एमएलए कोर्ट में अपने बयान से पलट जाती है और कहती है कि उसने पूर्व मंत्री व राजनेता स्वामी चिन्मयानंद के खिलाफ बलात्कार का कोई आरोप नहीं लगाया था। वह उन रेप पीड़िताओं की लंबी फेहरिस्त में सिर्फ एक और नाम है जो हमारे शासन तंत्र में समाहित संरचनात्मक भेदभाव का मुकाबला करने में आर्थिक रूप से अक्षम होने के कारण अपने लगाए गए आरोप से पलट गई। और ये तब हुआ जब सुप्रीम कोर्ट ने एसआईटी को आदेश दिए थे कि वो इस केस की फास्ट ट्रैक जांच करवाए।

जैसी की उम्मीद थी, रसूख वाले लोगों से पंगा लेने के एवज में अब उसे झूठी गवाही के आरोपों को झेलना पड़ रहा है। शुरुआत से ही, जबसे उक्त छात्रा ने आरोप लगाए थे, पूरा राज्य तंत्र स्वामी चिन्मयानंद को बचाने में लग गया था। भारतीय जनता पार्टी के इस नेता पर धारा 375 के तहत रेप का मामला दर्ज नहीं किया गया बल्कि 378 सी के तहत किया गया जो कि रेप के हल्के आरोपों में लगता है और उन लोगों पर लगाया जाता है जो अपने आधिकारिक पद का दुरुपयोग कर किसी महिला को अपने साथ यौन संबंध बनाने के लिए फुसलाते या बहकाते हैं। ऑल इंडिया वीमेन्स डेमोक्रेटिक एसोसिएशन की अध्यक्ष सुहासिनी अली बताती हैं, ''स्वामी चिन्मयानंद के खिलाफ केस को हल्की धारा के तहत दर्ज किया गया था, और बावजूद इसके कि कानून की वह छात्रा अगस्त 2019 से लेकर दिसम्बर 2019 तक शिकार बनती रही, उसे खुद वसूली के आरोप में जेल में रहना पड़ा।'' उसे बाद में जेल से रिहा कर दिया गया लेकिन स्वामी चिन्मयानंद को भी रिहा कर दिया गया था और वो भी बहुत थोड़े दिनों तक जेल में रहने के बाद ही। जब वे जेल से निकले तो बाहर गेट पर उनके समर्थकों ने उनका स्वागत फूलों के गुलदस्ते देकर किया था। पिछले कुछ महीनों के दौरान, कानून की छात्रा से जुड़े श्रोतों ने बताया कि पीड़िता छात्रा को यह विश्वास होने लगा था कि वर्तमान व्यवस्था में उसे न्याय नहीं मिल सकेगा। उसकी एक सहकर्मी ने बताया, ''उसका केस आगे नहीं बढ़ रहा था और न्याय पाने की उसकी उम्मीद दिनोंदिन धूमिल होती जा रही थी।''

कानून की इस छात्रा का मामला उन हजारों मामलों में से एक है जहां रेप पीड़िता खुद को ऐसी ही बाधाओं से जूझते हुए पाती है और अंत में अपने ही लगाए आरोप से मुकर जाती है। दलित महिलाओं के मामले में तो यह और स्पष्ट तरीके से सामने आता है। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के डेटा बताते हैं कि देश में हर रोज चार दलित महिलाओं के साथ बलात्कार होता है। रेप पीड़िताएं अगर खुद की ही गवाही से मुकर जाती हैं, तो इसके पीछे पुलिस की बेकार जांच और न्याय प्रक्रिया की बेहद धीमी गति बड़ा कारण है।

इस ट्रेंड का पता लगाने के लिए, हिन्दुस्तान टाइम्स ने 2014–2015 के बीच दिल्ली कोर्ट द्वारा निर्धारित रेप के 663 मामलों के नतीजों का अध्ययन किया। इनमें से आधे से ज्यादा मामलों में रिहाई का फरमान आया क्योंकि सुनवाई के वक्त पीड़िता रेप के अपने आरोप से मुकर गई थी। इसी तरह के एक और रेप केस में बताया गया कि लगातार सात साल तक यौन उत्पीड़न का शिकार होते रहने के बाद भी पीड़िता अपने बयान से मुकर गई क्योंकि आरोपी

उसके पिता के करीबी दोस्त थे और उस लड़की पर परिवार का जबर्दस्त दबाव था।

पैसा लेकर समझौता करने के लिए परिवार का दबाव केस वापस लेने का एक और बड़ा कारण है। साथ ही पुलिस भी मामला वापस लेने के लिए दबाव बनाती है क्योंकि अक्सर वह उच्च जाति के आरोपियों का ही प्रतिनिधित्व करती पाई जाती है। कुछ कार्यकर्ताओं का मानना है कि ऐसे मामलों में अदालतों को पुलिस के खिलाफ कार्रवाई करनी चाहिए। साथ ही उन परिवारों पर भी सवाल उठने चाहिए जो पैसा लेकर समझौता करने के लिए अपनी बेटियों पर दबाव बनाते हैं।

वरिष्ठ अधिवक्ता कीर्ति सिंह कहती हैं, ''रेप पीड़िताओं के लिए क्षतिपूर्ति की योजना प्रभावी ढंग से काम नहीं कर रही हैं और ज्यादातर मामले कोर्ट के बाहर निबटा लिए जा रहे हैं।'' वे कहती हैं, ''न्याय का पैमाना इतना असमान है कि एक गरीब घर की रेप पीड़ित लड़की किसी ताकतवर और रसूख वाले बलात्कारी के सामने खड़े होने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाती है।''

यहां तक कि जो बच्चे रेप का शिकार होते हैं उनके साथ भी लगभग यही हालात हैं, जबकि उनके मामले में बना पोस्को एक्ट कहीं अधिक सख्त है। पोस्को के तहत आरोपी की तुरंत गिरफ्तारी और फास्ट ट्रैक के तहत सुनवाई सुनिश्चित की जाती है। हालांकि ज्यादातर मामलों में ये काम नहीं कर रहा है क्योंकि पीड़ित के परिवार कोर्ट के बाहर समझौता करने की बात मान लेते हैं। ये स्थिति पूरे देश में एकसमान है।

हैदराबाद स्थित भरोसा केन्द्र, जो यौन दुर्व्यवहार के पीड़ितों को कानूनी, चिकित्सकीय और काउंसिलिंग संबंधी सहायता मुहैया कराता है, ने हाल ही में खुलासा किया कि कैसे 52 मामलों में से 48 में पीड़िता अपने बयान से मुकर गई, और इस प्रकार आरोपी के खिलाफ लगाए गए आरोप समाप्त हो गए। भरोसा केन्द्र के एक अधिकारी ने बताया, ''पीड़िता और उसके परिवार को आरोपी की ओर से लगातार धमकी मिलती रहती है। इसके अलावा, अक्सर पीड़िता दूसरे राज्य की होती है और उसे सुनवाई के लिए बार–बार आना पड़ता है। ऐसे में वे मामले को कोर्ट में आगे नहीं बढ़ाना चाहती हैं।'' कुछ मामलों में, पीड़िता खुद शहर छोड़कर चली जाती हैं क्योंकि रेप से जुड़ी शर्म और कलंक का सामना वे नहीं कर पाती हैं। भरोसा केन्द्र के अधिकारी बताते हैं कि कई बार बलात्कार पीड़िताएं बहुत गरीब होती हैं। किसी भी तरह की काउंसिलिंग और मार्गदर्शन उन्हें लाभ नहीं पहुंचा पाती हैं। उनकी आमदनी रोज के काम पर टिकी होती है और वे बार–बार अपने काम को रोक नहीं सकती हैं।

सेंटर फॉर सोशल रिसर्च की निदेशक डॉ. रंजना कुमारी मानती हैं, ''जांच में चूक कानूनी लड़ाई को आगे ले जाने को मुश्किल बना देती है। ज्यादातर मामलों में आरोपी ऊंची जाति के होते हैं और अपनी ताकत के बल पर नीची जाति की पीड़िताओं को डराने–धमकाने में कामयाब हो जाते हैं। असल में, पूरा आधिकारिक तंत्र गरीब घर की पीड़िता को डराने में जुट जाता है।''

इस पूरे उद्धरण में हाथरस से बेहतर उदाहरण नहीं हो सकता है। जहां जिलाधिकारी ने बलात्कार पीड़िता की लाश को उसके परिवार वालों की अनुमति के बिना ही जबर्दस्ती जला दिया। डॉ. कुमारी कहती हैं, ''पूरा राज्य तंत्र चारों ठाकुर बलात्कारियों के समर्थन में जुट गया है। अब उन्होंने दो ताकतवर वकीलों को भी रख लिया है जो राज्य सरकार और बलात्कारियों की तरफ से उनका केस देखेंगे। ऐसे में ये गरीब वाल्मिकी परिवार के लिए क्या रास्ता बचा है?''हाथरस मामले में बलात्कार के सबूतों से छेड़छाड़ का मामला अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के डॉ. अजीम मलिक ने उठाया था। उन्होंने बताया कि वीर्य के नमूनों को बलात्कार की घटना के 11 दिन के बाद फोरेंसिक जांच के लिए लाया गया था जबकि इतने समय में सारे प्रमाण नष्ट हो जाते हैं। सुप्रीम कोर्ट की वरिष्ठ वकील वृंदा ग्रोवर कहती हैं, ''आरोपियों के लिए कई दरवाजे खुले हैं जो पीड़िता और उसके परिवार के लिए न्याय के बहुत कम मौके छोड़ते हैं। सरकारी मशीनरी से खतरे इतने ज्यादा हैं कि उनका सामना करना मुश्किल है।'' वे कहती हैं, ''सबूत मिटा दिए जाते हैं, गवाह अप्रभावी होते हैं। और उनकी सुरक्षा के लिए कोई तंत्र भी मौजूद नहीं होता है।''

मुझे उन्नाव रेप केस की पीड़िता से मिलने का मौका मिला था। बलात्कार के बाद उसने मुख्यमंत्री आवास के बाहर खुद को जलाने का प्रयास किया था जिसके बाद उसे और उसके परिवार को उन्नाव के गेस्ट हाउस में रखा गया था। हाल ही में उसके पिता की मौत हो गई थी और बड़ी मुश्किल से वो यही बता पाई कि उसके पिता को विधायक (कुलदीप सिंह सेंगर) के भाई और साथियों द्वारा इतनी बेरहमी से पीटा गया था कि उनकी मौत हो गई। वो खुद मरते–मरते बची थी क्योंकि जिस कार से वो आ रही थी उसे एक ट्रक ने रौंद दिया था। इस दुर्घटना में उसकी चाची की मौत हो गई और वो खुद और उसके वकील बुरी तरह घायल हो गए। सुप्रीम कोर्ट के दखल के बाद उसे और उसके वकील को एयरलिफ्ट करके दिल्ली के एम्स में भर्ती कराया जा सका।

अनुक्रमणिका

संकल्पना

श्रद्धांजलिः कमला भसीन

हमारी बात : संपादकीय

थीम पेपरः क्यों मुकर जाती हैं रेप पीड़िताएं — 1
– रश्मि सहगल

खेती–बाड़ीः कोई नहीं जानता मेरे बारे में — 4
– महिमा जैन

घरेलू हिंसाः लॉकडाउन में बढ़ी हिंसा — 8
– रमेश मेनन

घरेलू हिंसाः महामारी की परछाईं — 10
– विराज स्वैन

किशोरी शिक्षाः किशोरियों की शिक्षा दूर की कौड़ी क्यों — 11
–रशेल वाइल्डर

बाल विवाहः जहां आई बाढ़, वहां बढ़े बाल विवाह — 14
– मधुलिका खन्ना
– निष्ठा कोचर

एक नजरः आंकड़े — 16

माहवारीः मासिक धर्मः सिर्फ नैपकिन काफी है! — 17
–पूजा अवस्थी

विज्ञानः कहां गईं विज्ञान की सब लड़कियां — 20
–डॉ. अनीता कुरूप

क्योंकि मैं लड़की हूं, मुझे पढ़ना है
एक पिता अपनी बेटी से कहता है-
पढ़ना है! पढ़ना है! तुम्हें क्यों पढ़ना है?
पढ़ने को बेटे काफी हैं, तुम्हें क्यों पढ़ना है?
बेटी पिता से कहती है-
जब पूछा ही है तो सुनो मुझे क्यों पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

पढ़ने की मुझे मनाही है सो पढ़ना है
मुझे में भी तरुणाई है सो पढ़ना है
सपनों ने ली अंगड़ाई है सो पढ़ना है
कुछ करने की मन में आई है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

मुझे दर-दर नहीं भटकना है सो पढ़ना है
मुझे अपने पांवों चलना है सो पढ़ना है
मुझे अपने डर से लड़ना है सो पढ़ना है
मुझे अपने आप ही गढ़ना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

कई जोर जुल्म से बचना है सो पढ़ना है
कई कानूनों को परखना है सो पढ़ना है
मुझे नए धर्मों को रचना है सो पढ़ना है
मुझे सब कुछ ही तो बदलना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

हर ज्ञानी से बतियाना है सो पढ़ना है
मीरा का गाना गाना है सो पढ़ना है
मुझे अपना राग बनाना है सो पढ़ना है
अनपढ़ का नहीं जमाना है सो पढ़ना है
क्योंकि मैं लड़की हूं मुझे पढ़ना है

कमला भसीन

खेती–बाड़ी

''कोई नहीं जानता मेरे बारे में''

प्रवास का महिलाओं के जीवन पर, परिवार के साथ उनके रिश्तों पर प्रभाव व्यापक होता है लेकिन बड़े स्तर पर इसकी कोई चर्चा नहीं होती है। इन छूट गई औरतों पर अकादमिक स्तर पर तो बहुत बातें होती हैं किन्तु मीडिया में ये कहीं नहीं होतीं।

कृषि क्षेत्र के 'नारीवादीकरण' पर जोर के बाद भी 2017–18 के आर्थिक सर्वेक्षण में सामने आया है कि पुरुष प्रवसियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। महिलाओं की संख्या अधिक होने के बाद भी केवल 12.8 प्रतिशत के पास ही अपनी जमीन है।

वैश्विक स्तर पर महिलाएं देखभाल से जुड़े 75 प्रतिशत काम करती हैं जो अवैतनिक होता है। अगर हिसाब लगाया जाए तो, भारतीय महिलाओं द्वारा घर और खेतों में किए जाने वाले ये काम देश की 49 प्रतिशत जीडीपी के बराबर है।

पति के परदेस चले जाने के बाद पीछे रह गई औरतों की दास्तान

महिमा जैन

(स्वतंत्र पत्रकार हैं जो विज्ञान, पर्यावरण, सांस्कृतिक तथा सामाजिक–आर्थिक विषयों पर लिखती रही हैं)

समस्तीपुर, बिहारः वो फरवरी का महीना था जब मध्य बिहार के समस्तीपुर जिले के उजियारपुर गांव में अनीता कुमारी अन्य दूसरी औरतों के साथ बरामदे में अछूत की तरह बैठी थीं। सभी औरतों में एक समान बात ये थी कि सभी ने अपनी मांग में लाल सिंदूर और माथे पर बिंदी लगा रखी थी। अपने खेत में और एक स्वयं सहायता समूह में रोज करीब 17 घंटे से अधिक काम करने वाली करीब तीस की अनीता से जब मैंने पूछा कि ''उसने क्या–क्या किया'', तो उसने शर्माते हुए जवाब दिया, ''कुछ नहीं''। समूह में हंसी छूट पड़ी। एक दूसरी औरत ने कहा, ''हम सब कुछ नहीं करती हैं।'' कुमारी ने पूछा कि अगर हमें किसी काम से कोई आमदनी नहीं होती तो क्या वाकई में वो 'काम' होता है? अनीता जब 18 की भी नहीं हुई थी तो उसकी शादी करा दी गई और समस्तीपुर से 15 किलोमीटर दूर उजियारपुर गांव में पहुंच गई, जहां उसे नया नाम मिला ''अजीत कुमार की पत्नी''। उसके थोड़े समय बाद ही कुमार वहां से 1500 किलोमीटर दूर हैदराबाद की एक डेयरी कंपनी के रिटेल आउटलेट पर काम करने के लिए पलायन कर गया। उसकी आय इतनी भी नहीं थी कि वो अपनी पत्नी और दो बच्चों को अपने साथ ले जा पाता। शादी के एक दशक बाद अब अनीता गांव में अपने सास–ससुर के साथ रहती है। कॉलेज ग्रेजुएट और होम साइंस की डिग्री के साथ, जिसे उसने अपने ससुराल वालों की अनुमति से दूरस्थ शिक्षा के जरिये प्राप्त किया था, अनीता अपने ससुराल की खेत और घर में काम करती है।

अजीत साल में एक बार घर आता है। लेकिन पिछले साल कोविड–19 के प्रसार को रोकने के लिए जो लॉकडाउन लगाया गया और कारखाने बंद हो गए तो अजीत के सामने भी ये सवाल उठ खड़ा हुआ कि उसे वापस गांव लौटना चाहिए या वहीं हैदराबाद में रुक जाना चाहिए। उस पूरे कालखंड में देश के अलग–अलग राज्यों से हजारों मजदूरों और प्रवासियों का पैदल ही बिहार के लिए निकल पड़ने की कहानी न केवल परेशानी में डालने वाली थी बल्कि इस तथ्य को उजागर करने वाली भी थी कि अपनी कड़ी मेहनत से शहरों को आकार देने वाले इन मजदूरों का पुरसाहाल पूछने वाला कोई भी नहीं है। ऐसे में पीछे छूट चुकीं गांव में रह गईं इनकी औरतें तो परिदृश्य से लापता ही होती हैं। अनीता जैसी औरतों और उनके कामों का कोई अस्तित्व नहीं होता।

प्रवास का महिलाओं के जीवन पर प्रभाव, परिवार के साथ उनके रिश्तों पर प्रभाव व्यापक होता है लेकिन बड़े स्तर पर इसकी कोई चर्चा नहीं होती है। इन छूट गई औरतों पर अकाद. मिक स्तर पर तो बहुत बातें होती हैं किन्तु मीडिया में ये कहीं नहीं होतीं। इंडियन ह्यूमेन डेवलपमेंट सर्वे ;आईएचडीएसद्ध की 2005 और 2011 की रिपोर्ट में बताया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 4.5 प्रतिशत तथा शहरी क्षेत्रों में 1.5 प्रतिशत औरतें ऐसी हैं जिनके पति उन्हें छोड़कर कहीं और रहते हैं। जबकि 26 प्रतिशत औरतों के पति उसी राज्य में लेकिन किसी और जिले में रहते हैं। पूरे भारत में 23 और 13 प्रतिशत प्रवासी मजदूर क्रमशः उत्तर प्रदेश और बिहार के हैं, ऐसे में यह कहा जा सकता है कि इन राज्यों के 40 से 70 प्रतिशत घरों में कम से कम एक सदस्य प्रवासी है।

बिहार का समस्तीपुर देश के 10 उन जिलों में शामिल है जहां पुरुष प्रवा. सियों की दर सबसे अधिक है, और इन जिलों में प्रवासी सदस्यों वाले परिवारों को ढूंढना बहुत आसान है। सेंटर फॉर डेवलपमेंट स्टडीज, त्रिवेंद्रम के प्रवास और जनांकिकी के प्रोफेसर एस. इरुदाया राजन कहते हैं, ''एक पुरुष प्रवासी गांव में रह रहे अपने परिवार के कम से कम चार सदस्यों की सहायता करता है।'' 2011–12 के आईएचडीएस आंकड़ों के अनुसार, भारत में करीब 60 मिलियन प्रवासी हैं। लेकिन इस बार के

कोविड–19 लॉकडाउन के कारण प्रवास का संकट उभर कर सामने आ गया। राजन जैसे विशेषज्ञ इनकी संख्या को 140 मिलियन तक मानते हैं।

'इंडिया मूविंग' की लेखिका चिन्मय तुंबे मानती हैं कि एक प्रवासी मजदूर होने के भयावह अनुभव के बाद भी भारत के प्रवासियों की कहानी पुरुष प्रधान है। कृषि क्षेत्र के 'नारीवादीकरण' पर हाल के दिनों में दिए जा रहे जोर के बाद भी 2017–18 के आर्थिक सर्वेक्षण में ये बात सामने आई है कि पुरुष प्रवासियों की संख्या में बढ़ोतरी हुई है। आवधिक श्रम कार्यबल सर्वे 2017–18 के अनुसार, उक्त अवधि के दौरान गांवों में 73.2 प्रतिशत महिलाओं ने कृषि श्रमिक के तौर पर काम किया जबकि उसी समय में ऐसे पुरुषों की संख्या 55 प्रतिशत थी। महिलाओं की संख्या अधिक होने के बाद भी उनमें से केवल 12.8 प्रतिशत के पास ही अपनी जमीन है। ''गुड वीमेन डू नॉट इनहेरिट लैंड'' की लेखिका नित्या राव कहती हैं कि समस्या की शुरुआत परिभाषा से ही हो जाती है। वे कहती हैं, ''औरतें खेती से जुड़ी बहुत सारा काम करती हैं, लेकिन उनका अपने श्रम, आय या संपत्ति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है।'' भारत में ज्यादातर ''किसान'' उन्हें कहा जाता है जिनके पास जमीन का स्वामित्व होता है, इसलिए औरतों को 'खेतिहर मजदूर'' के तौर पर ही जाना जाता है।

अनीता कुमारी का जीवन खेती और परिवार में काम करने वाली ऐसी ही उपेक्षित और अनदेखी औरतों का एक आदेशपत्र है। राव के मुताबिक, औरतों का शहरों की ओर पलायन कम होने का एक बड़ा कारण उनके लिए काम और मजदूरी दोनों का कम होना है। और सबसे बड़ा सवाल कि अगर वे गांव छोड़ देंगी तो फिर परिवार और खेतों का ध्यान कौन रखेगा? कोविड–19 का तो पता नहीं लेकिन अपने पति से लगातार दूर रहने की बेचैनी के अलावा अनीता कुमारी के जीवन में कुछ भी नहीं बदला। पिछले एक दशक से उसका जीवन अपने घर के पिछवाड़े की छोटी सी जमीन के इर्द–गिर्द ही सिमट कर रह गया है। वो घर जिसमें वो अपने बच्चों, सास–ससुर, एक ननद (जिसका पति भी एक प्रवासी मजदूर है) और उनके तीन बच्चों के साथ रहती है।

कुमारी के घर के आगे के आंगन में चार भैंसे और दो गायें हैं जिनकी देखभाल करना और चारा देना उसी का काम है। कुमारी के दिन की शुरुआत सुबह चार बजे यहीं से होती है। फिर दिन का खाना बनाने और दूसरे कामों के बाद रात का खाना बनाने से उसके तीसरे पहर के कामों की शुरुआत हो जाती है। कुमारी और उसकी ननद अपने एक कट्ठे के आंगन में ही सब्जियां उगाती हैं जिन्हें उसके ससुर बाजार में जाकर बेचते हैं। इन औरतों को अपने चार कट्ठा वाले खेत में जाने की इजाजत नहीं है। उस जमीन पर काम करने के लिए एक मजदूर रखा गया है जिसे उसके ससुर मजदूरी देते हैं। कुमारी कहती है, ''सारी जमीन के मालिक उसके ससुर हैं।'' कुमारी को उसके द्वारा किए गए किसी भी काम के लिए कोई पारिश्रमिक नहीं

चित्रः इंडियास्पेंड

दिया गया। यही वजह है कि उनके कामों की कोई गिनती नहीं की जाती है।

राव के मुताबिक, घर के खेतों पर महिलाओं द्वारा किए गए काम को अवैतनिक माना जाता है, और इसलिए उनका योगदान महत्वहीन हो जाता है। वे कहते हैं, ''चूंकि घर के मामलों से जुड़े निर्णय में उनकी भूमिका शून्य होती है, इसलिए आय में भी उनका कोई दावा नहीं होता है।'' वैश्विक स्तर पर महिलाएं देखभाल से जुड़े 75 प्रतिशत काम करती हैं जो अवैतनिक होता है। अगर इसका हिसाब लगाया जाए तो, भारतीय महिलाओं द्वारा घर और खेतों में किए जाने वाले ये अवैतनिक काम देश के 49 प्रतिशत सकल घरेलू उत्पाद के बराबर है।

दो साल पहले कुमारी के ससुर ने अपनी पैतृक संपत्ति को दोनों बेटों में बांट दिया था जिससे दोनों को एक–एक कट्ठा जमीन मिली। लेकिन जमीन के ये टुकड़े इतने छोटे थे कि इनमें अपने बढ़ते परिवार के लिए अनाज उगाना मुश्किल था। जनसंख्या बढ़ने के साथ–साथ हमारे देश में खेती योग्य जमीन का आकार लगातार छोटा होता जा रहा है। ऐसे में अधिक आय प्राप्त करने के लिए घर के मर्दो को शहरों की ओर पलायन करना पड़ रहा है और इस प्रकार गांव में रह गई औरतों को खेतों में काम करना पड़ रहा है जिसे हम 'कृषि का नारीवादीकरण' कहते हैं। पानी की कमी और जलवायु संबंधी विविधताएं औरतों के लिए परेशानी बढ़ाते हैं। इन्हीं समस्याओं को संबोधित करने के लिए भारत में हरित क्रांति के जनक कृषि वैज्ञानिक एम.एस. स्वामीनाथन ने 2012 में संसद में 'द वीमेन फार्मर्स इंटाइटलमेंट बिल' प्रस्तुत किया था। उनका तर्क था कि चूंकि महिलाओं के पास अपनी जमीन का मालिकाना हक नहीं होता है इसलिए उन्हें जमीन पर अधिकार पाने, कर्ज, बीमा पाने, तकनीक तथा बाजार तक पहुंच स्थापित करने में महती बाधाओं का सामना करना पड़ता है। बिल में महिला किसानों के लिए प्रमाणपत्र जारी करने का प्रस्ताव दिया गया था लेकिन 2018 में सरकार ने उसे यह कहते हुए खारिज कर दिया कि चूंकि 2011 की जनगणना में 36 मिलियन औरतों को पहले ही 'खेतिहर' के तौर पर मान्यता दी जा चुकी है इसलिए ऐसे किसी प्रमाणपत्र की जरूरत नहीं है। वह बिल कभी भी कानून नहीं बन सका।

श्रोतः civilsdaily.com

विकास अर्थशास्त्री तथा 'ए फील्ड ऑफ वन्स ओन' की लेखिका बीना अग्रवाल मानती हैं कि जमीन पर मालिकाना हक नहीं होना ही समाज में औरतों के निम्न दर्जे के लिए जिम्मेदार है। नेशनल काउंसिल फॉर एप्लाइड इकोनोमिक रिसर्च में सामाजिक डेमोग्राफर के तौर पर कार्यरत मंजिष्ठा बनर्जी के मुताबिक, औरतें अक्सर अपने माता–पिता की संपत्ति में हिस्सा मांगने में संकोच करती हैं। यह एक अच्छी बेटी होने के सामाजिक मानदंडों में फिट में नहीं बैठता है। 2005 में संशोधित हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम, 1956 पैतृक संपत्ति में औरतों को उनका हिस्सा देता है लेकिन कानूनी प्रावधान पितृसत्तात्मक प्रवृत्तियों पर हावी नहीं हो पाते हैं। बनर्जी बताती हैं कि कई मामलों में तो लड़कियों से उनकी शादी के समय में ही एक एफिडेबिट पर साइन करना लिया जाता है कि वे अपने माता–पिता की संपत्ति में हिस्सा नहीं मांगेंगी। राव कहते हैं, ''अगर औरतें अपने मां–बाप की संपत्ति में हिस्सा मांगेंगी तो इससे उनके भाई के साथ संबंधों पर सामाजिक दवाब पड़ सकता है।'' हमारे देश में 46 प्रतिशत प्रवासी विवाह के लिए प्रवास करते हैं और उनमें से 97 प्रतिशत औरतें होती हैं। जाहिर है पति के घर चले जाने के बाद औरतें मायके में रह गई संपत्ति का ध्यान नहीं रख पाती हैं। जहां तक जमीन का पति–पत्नी दोनों के नाम के साथ निबंधित होने का सवाल है तो उसके लिए प्रयास जारी हैं लेकिन प्रगति बहुत धीमी है। जब कुमारी से पूछा गया कि क्या यह जमीन उसके भी नाम होगी तो उसने जवाब दिया, ''नहीं, शायद मेरे पति के नाम होगी। लेकिन मैं उनकी पत्नी हूं तो यह मेरे नाम भी हो ही जाएगी।''

श्रोतः Artical14

घरेलू हिंसा

पिछले वर्ष नवंबर में कोलंबिया के मेडेलिन में स्त्री हत्या की पीड़िताओं की तस्वीरों को यूं सड़क पर रखकर विरोध जताया गया। *फोटोः एएफपी*

लॉकडाउन में बढ़ी हिंसा

रमेश मेनन

(लेखक एक वरिष्ठ पत्रकार और वृत्तचित्र फिल्म निर्माता हैं। उन्हें अपने लेखन के लिए रामनाथ गोयनका अवार्ड फॉर एक्सीलेंस इन जर्नलिज्म मिल चुका है)

30 साल की पूनम की शादी को पांच साल हो गए थे और वो अपने मायके में थी जब अचानक ही लॉकडाउन की घोषणा कर दी गई। अपने छोटे बच्चे को लेकर वो पति के घर लुधियाना पहुंची लेकिन पति ने उसे घर में घुसने नहीं दिया और धक्के मारकर निकाल दिया। उसका पति इससे पहले भी उसके साथ शारीरिक और यौन हिंसा करता था, उसका किसी और स्त्री के साथ अफेयर था और लुधियाना तक पूनम की यात्रा इस स्थिति से बाहर निकलना था। बदहवास पूनम ने हेल्पलाइन को फोन किया। पुलिस ने भी तुरंत कार्रवाई की और स्पेशल सेल फॉर वीमेन को उसकी सहायता के लिए भेजा। उन्होंने उसके पति की काउंसिलिंग की जिसके बाद वह पूनम को अपने साथ ले गया। अब सामाजिक कार्यकर्ता नियमित तौर पर उसके संपर्क में रहते हैं और पूनम तथा उसका बच्चा दोनों सुरक्षित हैं।

स्पेशल सेल फॉर वीमेन 15 राज्यों में पुलिस के साथ मिलकर काम कर रहा है; इसका गठन टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल साइंसेज ने 1984 में महिलाओं के लिए काम करने वाले एक संगठन के साथ किया था। मुंबई में, कैदियों के अधिकारों के लिए काम करने वाले एक संगठन ने टाटा इंस्टीच्यूट ऑफ सोशल साइंसेज से संपर्क किया ताकि वे एक महिला और उसके बच्चे को एक अस्थायी आश्रय में शिफ्ट कर सकें। उसका पति जो जेल में सजा काट रहा था, उसे महामारी के दौरान पेरोल पर रिहा किया गया क्योंकि जेल में भीड़ बहुत ज्यादा थी। जेल से बाहर आते ही उसने पत्नी को फिर से प्रताड़ित करना शुरू कर दिया। उसने बच्चों को भी पीटा और सभी को घर से बाहर निकाल दिया। उसे डर था कि उसका परिवार कोरोना वायरस की

घरेलू हिंसा

चपेट में है।

दरभंगा में, 32 साल की सावित्री को उसका पति बुरी तरह पीटता था। यहां तक कि उसने सावित्री को जहर देने की भी कोशिश की थी। जब उसने अपने माता–पिता से संपर्क किया तो उन्होंने साफ तौर पर कह दिया कि वो अपने पति के साथ सुलह करे और मायके लौट कर आने की न सोचे। पुलिस को कई बार फोन करने के बाद भी जब उसे कोई मदद नहीं मिली तो उसने एक सामाजिक कार्यकर्ता को फोन किया। कार्यकर्ता के हस्तक्षेप के बाद ही सावित्री को पुलिस की सहायता मिल पाई। यद्यपि, कार्यकर्ता उसके संपर्क में है लेकिन वो अब भी डर में जी रही है। अपने प्रताड़क के साथ लॉक हो जाना भयावह है। आदर्श तौर पर, जिन औरतों को घर में प्रताड़ित किया जाता है उन्हें आश्रय गृह में भेज दिया जाता है, लेकिन महामारी के दौरान ऐसा करना असंभव था। ज्यादातर आश्रय गृह या तो प्रवासियों से भरे हुए थे या उन्हें क्वारंटाइन सेंटर बना दिया गया था। मुंबई में काम कर रहीं सामा. जिक कार्यकर्ता वीणा गौड़ा कहती हैं, ''इन पीड़ित औरतों को हम आश्रय गृहों में नहीं भेज सकते हैं।'' ऐसे में प्रताड़ना के बाद भी घरों में रह रहीं औरतों के प्रति उन्हें बहुत सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि कई बार इससे उनके पति और अधिक हिंसक हो जाते हैं। एक अन्य सामाजिक कार्यकर्ता बेहद गुस्से में कहती हैं कि कानून के अधिकारियों को पीड़ित महिलाओं और बच्चों को आश्रय गृहों में बुरी स्थिति में रहने के लिए भेजने की बजाय उनके प्रताड़कों को ही आश्रय गृहों में भेजना चाहिए।

घरेलू हिंसा के मामलों में वृद्धि के साथ ही, पुणे जिला परिषद ने समर्पित ग्रामस्तरीय समिति गठित की ताकि ऐसे मामलों का पता लगाया जा सके और फिर प्रताड़कों की काउंसिलिंग की जा सके। यदि प्रताड़ना फिर भी जारी रही तो, दोषी को 'संस्थागत क्वारंटाइन' के अधीन रखा जाएगा ताकि पीड़िता अपने घर में शांति से रह सके और उसे किसी आश्रय गृह में नहीं जाना पड़े।

नेशनल लीगल सर्विस अथॉरिटी जो सुप्रीम कोर्ट के जस्टिस एन.वी. रमन्ना को रिपोर्ट करती है, ने अपनी रिपोर्ट में बताया है कि लॉकडाउन के दौरान उत्तराखंड में घरेलू हिंसा के 144 मामले दर्ज किए गए थे। हरियाणा में ऐसे 79 मामले सामने आए जबकि दिल्ली में 63। ये केवल वे मामले थे जो पुलिस तक पहुंच पाए। अहमदाबाद स्थित संगठन चेतना की निदेशक पल्लवी पटेल ने बताया कि महामारी के दौरान घरेलू हिंसा के केवल मुट्ठी भर मामले ही रजिस्टर करवाए जा सके थे क्योंकि लॉकडाउन के कारण लोगों को अपने घर से निकलने की अनुमति नहीं थी। दिल्ली की सीमा पर स्थित नोएडा में ही 573 मामले दर्ज करवाए गए थे। राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में स्थित और नोएडा की सीमा पर स्थित गाजियाबाद में 633 मामले दर्ज करवाए गए थे। गाजियाबाद स्थित हेल्पलाइन के मुताबिक, लॉकडाउन के दौरान उनके पास रोज करीब 35 फोन आते थे जो लॉकडाउन के पहले केवल पांच की संख्या में ही आते थे।

पुणे स्थित मैत्री नेटवर्क की समन्वयक समृति मनोचा बताती हैं कि लॉकडाउन के दौरान सामाजिक कार्यकर्ता पीड़िताओं से कहते थे कि वे यथासंभव अपने घर में रहने की कोशिश करें। स्थिति सामान्य होने के साथ ही उन्हें किसी बेहतर आश्रय गृह में भेज दिया जाएगा। उन्होंने कहा कि हिंसा के कारण लगी चोट की जांच कराने तक के लिए औरतें घर से बाहर नहीं निकल पाती थीं। इसका नतीजा ये होता था कि उनके पास अपने पीड़ित होने का कोई प्रमाण मौजूद नहीं रह पाता था। ऐसे फोन भी आते थे जिसमें कहा जाता था कि उनके पति ने उन्हें खर्च देना बंद कर दिया है। लड़कियों के फोन आते थे कि उनके पिता उनकी पिटाई करते थे। वह स्थिति बेहद असहाय करने वाली थी। राष्ट्रीय महिला आयोग ने जब देखा कि लॉकडाउन होते ही महिलाओं पर अत्याचार कई गुना बढ़ गए हैं तो उसने एक व्हाट्सएप नंबर जारी किया। केवल पहले सप्ताह में ही उनके पास आने वाली शिकायतों की संख्या पहले से दोगुनी थी जो घरेलू हिंसा और यौन प्रताड़ना से जुड़ी होती थीं। एनसीडब्ल्यू की अध्यक्ष रेखा शर्मा ने कहा कि उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा और पंजाब से बड़ी संख्या में मामले सामने आए। महिला एवं बाल विकास मंत्री स्मृति ईरानी ने अपने कर्मचारियों से कहा कि वे पीड़ित औरतों को अधिक से अधिक मामले दर्ज करने के लिए प्रोत्साहित करें। साथ ही ऐसी महिलाओं की रक्षा को सुनिश्चित करने के लिए उन्होंने डिजिटल प्रशासन को भी सशक्त बनाने का निर्देश दिया।

घरेलू हिंसा के मामलों में आई तेजी को रोकने के लिए एक जनहित याचिका पर सुनवाई के दौरान जम्मू–कश्मीर हाई कोर्ट ने पाया कि यदि औरतें मामला दर्ज कराना चाहें, तो भी उनके रास्ते में कई बाधाएं आती हैं। कोर्ट ने कहा, ''हमने पाया कि प्रताड़ना और घरेलू हिंसा के खिलाफ शिकायत दर्ज कराने के लिए महिलाओं के सामने सबसे बड़ी बाधा ये है उन्हें अपने सबसे करीबी साथी के खिलाफ मामला दर्ज कराना होता है। कार्यान्वयन और बेहतर वैकल्पिक आवासीय व्यवस्था की कमी जैसे कारण औरतों को आगे बढ़ने से रोकते हैं। कमजोर वर्ग की पीड़ित महिलाएं ऑनलाइन प्रारूप से भी अवगत नहीं होती हैं जिसके कारण उन्हें सही समय पर सहायता नहीं मिल पाती है।

आदर्श तौर पर, जिन औरतों को घर में प्रताड़ित किया जाता है उन्हें आश्रय गृह में भेज दिया जाता है, लेकिन महामारी के दौरान ऐसा करना असंभव था। ज्यादातर आश्रय गृह या तो प्रवासियों से भरे हुए थे या उन्हें क्वारंटाइन सेंटर बना दिया गया था। ऐसे में प्रताड़ना के बाद भी घरों में रह रहीं औरतों के प्रति उन्हें बहुत सतर्क रहना पड़ता है क्योंकि कई बार इससे उनके पति और अधिक हिंसक हो जाते हैं।

(श्रोतः http://indiatogether.org)

घरेलू हिंसा

महामारी की परछाई

हाल ही में राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण (एनएफएचएस 5) के आंशिक आंकड़े जारी किए गए हैं जिसमें देश को पीछे ले जाने वाली दो बातों का खुलासा हुआ है। बाल पोषण की स्थिति पिछले पांच वर्षों में बदतर हो गई है जिसने पिछले 20 सालों की हमारी उपलब्धियों पर पानी फेर दिया है। और दूसरा, 18 से 49 वर्ष के बीच की 30 प्रतिशत से अधिक औरतों को अपने पति से हिंसा का सामना करना पड़ा है।

कमजोर, कुपोषित और कम वजन के बच्चों की संख्या ज्यादातर शहरों में बढ़ी है। बौने कद के कमजोर बच्चों की दर केरल, गुजरात, महाराष्ट्र, गोवा और हिमाचल प्रदेश में बढ़ी है और इनमें से सभी ने पिछले दो दशकों में अपने यहां कुपोषित बच्चों की दर को कम कर लिया था। जहां तक पति–पत्नी के बीच हिंसा का सवाल है, कर्नाटक में स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक है; राज्य में इस तरह की हिंसा 2015–16 के एनएफएचएस 4 में बताई गई दर 20.9 से कहीं अधिक बढ़कर 44.4 प्रतिशत तक हो गई है। अन्य राज्य जहां पति–पत्नी के बीच हिंसा की दर 30 प्रतिशत से अधिक है, उनमें असम, आंध्र प्रदेश, तेलंगाना, बिहार और मिजोरम शामिल हैं। महिलाओं के खिलाफ हिंसा के मामले जहां पहले भी चिंता में डालने वाले थे वहीं कोविड–19 महामारी के दौरान हुए लॉकडाउन के दौरान इसमें अतिशय बढ़ोतरी हो गई। सर्वेक्षण में ये बात सामने आई है। महामारी से पहले करीब 18 प्रतिशत औरतें और लड़कियां अपने किसी निकटतम साथी से शारीरिक और यौन हिंसा की शिकार होती थीं। महामारी के बाद हर प्रारूप में महिलाओं के खिलाफ हिंसा में वृद्धि हुई फिर चाहे वो गलियों में हो या ऑनलाइन, इसे 'शैडो पैनडेमिक'' कहा गया। अंदेशा इस बात का है कि लॉकडाउन के हर तीन महीने में 15 मिलियन और महिलाओं के इस तरह की हिंसा से ग्रस्त होने की आशंका है। भारत में सामा. जिक कार्यकर्ताओं और संगठनों का मानना है कि महामारी के साये में औरतों पर हिंसा की घटनाएं पिछले 10 वर्षों में अपने चरम पर हैं। महाराष्ट्र और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में महिला आयोग और पुलिस औरतों को इस बात के लिए प्रेरित कर रही हैं कि वे अपने खिलाफ होने वाली हिंसा की रिपोर्ट दर्ज कराएं ताकि उनकी समय पर जांच की जा सके और इस प्रकार घरों की चारदीवारी को उनके लिए सुरक्षित किया जा सके।

भले ही लॉकडाउन ने इन घटनाओं को भड़का दिया है लेकिन सच्चाई यही है कि इनके पीछे पुरुष सत्तात्मक समाज ही सबसे बड़ा कारण है। इसके लिए जेंडर के मानकों में बदलाव की जरूरत है। ओडीआई और एलाइन द्वारा प्रकाशित पत्र जिसे केरो. लिन हार्पर, रशेल मार्कस, रशेल जॉर्ज, सोफिया एम. डी एंजेलो और एमा सम्मन ने लिखा है, बताता है कि जेंडर के मानकों में बदलाव में लंबा समय लगता है और इस दौरान कई बाधाएं उत्पन्न होती हैं। ये बदलाव अक्सर असमान गति से होते हैं जिसमें सर्वाधिक वंचित वर्ग को ज्यादातर पीछे छोड़ दिया जाता है। इसलिए प्रगति के लिए अंतरविरोध के मुद्दों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है– विशेषाधिकारों के साथ–साथ भेदभाव पर भी– तथा निरंतरता अनिवार्य है। जेंडर के मानकों में बदलाव पर काम कर रहा है ब्रेकथ्रू ट्रस्ट। महिला अधिकारों पर काम कर रहा यह संगठन शिक्षा और संचार के माध्यम से इन मानकों में बदलाव लाने पर काम कर रहा है। इसके लिए इस संगठन ने तारों की टोली (टीकेटी) नामक एक कार्यक्रम बनाया है जो जेंडर भेदभाव और असमानता के इर्द–गिर्द के मानकों को लक्ष्य करता है। इसके लक्षित वर्ग में किशोरवय स्कूली विद्यार्थी हैं और यह एक सटीक तरीके से जेंडर आधारित भेदभाव की चर्चा कर उनके भीतर आलोचनात्मक सोच को बढ़ावा देता है।

इसके तहत दो सालों तक कक्षा 6 और 7 से लेकर 8 और 9 तक जीवन दक्षता शिक्षा दी जाती है। यह कार्यक्रम बच्चों में आत्मविश्वास और आत्म जागरूकता पैदा कर उन्हें विचारने और स्पष्ट रूप से संवाद करने का अवसर देता है, जिससे उनके भीतर स्व–प्रबंधन का कौशल उत्पन्न होता है ताकि वे प्रतिकूल परिस्थितियों, प्रवृत्तियों का सामना कर सकें तथा अपने स्वास्थ्य, सुरक्षा, शिक्षा, करियर तथा विवाह की आयु को लेकर सही निर्णय ले सकें। लेकिन सबसे महत्वपूर्ण बात ये कि यह कार्यक्रम बच्चों को क्रमबद्ध तरीके से जेंडर से जुड़ी असमानता और अन्य प्रथाओं को समझने में सक्षम बनाता है। टीकेटी को सबसे पहले हरियाणा के रोहतक, झज्जर, सोनीपत और पानीपत के 150 सरक. ारी स्कूलों में शुरू किया गया था और तब से अब तक यह दिल्ली, उत्तर प्रदेश, बिहार और झारखंड के कई जिलों तक विस्तार ले चुका है। जेंडर के मानकों में बदलाव का केन्द्र चार बिंदुओं पर टिका है– एक सशक्त पाठ्यक्रम जो बच्चों की वास्तविक सच्चाई के बारे में बताता है; आउटडेटेड और भेदभावपूर्ण मानकों को चुनौती देना; दोस्त बनाना और समुदाय तथा फ्रंटलाइन सरकारी कर्मचारियों तक पहुंच; तथा एक ऐसा पाठ्यक्रम जिसकी आकलन किया जा सके और जो मजेदार हो।

(श्रोतः http://indiatogether.org)

बिराज स्वैन

(लेखिका कलाम इंस्टीच्यूट ऑफ हेल्थ टेक्नालॉजी की सीनियर फेलो तथा इंटरनेशनल सेंटर फॉर जर्नलिस्ट वाशिंगटन डीसी की फेलो रही हैं)

किशोरी शिक्षा

किशोरियों की शिक्षा दूर की कौड़ी क्यों

असल चुनौती माध्यमिक स्कूलों के साथ है। यहीं जाकर नामांकन की दर कम होने लगती है और यही वो पड़ाव है जहां किशोरवय लड़कियों की शिक्षा के लाभ नजर आते हैं।

वे लड़कियां जो कक्षा 12 तक पहुंच नहीं पाईं उनमें से ज्यादातर निम्न आय वर्ग और ग्रामीण क्षेत्रों से थीं। देश के उत्तर–मध्य हिस्से में स्थिति चिंताजनक थी।

18 से 19 आयु तक आते आते एक–तिहाई से ज्यादा लड़कियां या तो कभी स्कूल गई ही नहीं होती हैं (4.4 प्रतिशत) या 12वीं में पहुचने से पहले स्कूल छोड़ चुकी होती हैं (22.2 प्रतिशत)।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति के ड्राफ्ट में शिक्षा के अधिकार को कक्षा 8 से कक्षा 12 तक विस्तारित करते हुए 3 से 18 साल के बीच के सभी बच्चों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की बात कही गई है। यह एक जेंडर समावेशी कोष को स्थापित करने की भी बात करता है जो ''स्कूल प्रणाली में लड़कियों की 100 प्रतिशत भागीदारी'' के महत्वाकांक्षी लक्ष्य के साथ काम करेगा। इस लक्ष्य तक पहुंचा जा सकता है।

भारत ने नामांकन की दर बढ़ाने में अच्छी प्रगति की है, खासकर प्राथमिक स्तर पर। 2015–16 में प्राथमिक आयु वर्ग की 95 प्रतिशत लड़कियां स्कूल में थीं, जो पिछले दशक से 81 प्रतिशत अधिक था। असल चुनौती माध्यमिक स्कूलों के साथ है। यहीं जाकर नामांकन की दर कम होने लगती है और यही वो पड़ाव है जहां किशोरवय लड़कियों की शिक्षा के वास्तविक लाभ नजर आते हैं– उच्च आय की संभावनाएं, विवाह में विलंब, अच्छा स्वास्थ्य और एजेंसी में वृद्धि।

रशेल वाइल्डर

(लेखिका नांदी फाउंडेशन के नीति एवं रणनीति सेल में कार्यरत हैं और जेंडर, शिक्षा तथा आर्थिक विकास पर काम करती हैं)

नांदी फाउंडेशन ने केसी महिन्द्रा एजुकेशन ट्रस्ट के साथ मिलकर 2016–17 में किशोरवय आयु की लड़कियों का राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व सर्वेक्षण करवाया जो देश का ऐसा पहला सर्वे था। हमारी टीम ने दो चीजों की पहचान करने के बाद टीनएज गर्ल्स (टीएजी) सर्वे को पूरा किया: पहला, भारत को किशारियों के लिए पहले से बेहतर साक्ष्य आधारित कार्यक्रमों और नीतियों की जरूरत थी। दूसरा, इस समूह की विशेष जरूरतों को लेकर कोई राष्ट्रीय आंकड़ा मौजूद नहीं था। भारत की 80 मिलियन किशोरियां देश के भविष्य को तय करेंगी, इसलिए ये जरूरी है कि हम विशिष्ट चुनौतियों के साथ उनकी लड़ाई को सफल बनाने में उनकी मदद करें। ऐसा करने के लिए, हमें पहले उन्हें समझना होगा। हमारे टीएजी सर्वेकर्ताओं ने प्रतिनिधि सैंपल के तौर पर

देश के सभी राज्यों की करीब 74 हजार लड़कियों से बात की। शिक्षा के साथ उनके अनुभव की पूरी तस्वीर को देखने के लिए हमने उनकी सच्चाई और आकांक्षाओं के बारे में पूछा। सर्वे ने हमें एक बड़ी खुशखबरी दी कि 80 प्रतिशत किशोरवय लड़कियां पढ़ाई कर रही थीं। साथ ही इसने हमारा ध्यान उन लड़कियों की ओर भी खींचा जो पढ़ाई नहीं कर रही थीं। हमें उम्मीद है कि हम उन लड़कियों के बारे में जान पाएंगे। वे कौन हैं, कहां रहती हैं और उन्होंने पढ़ाई क्यों छोड़ी। अगर इन सारी बातों की जानकारी मिल जाए तो सही जगह पर सही समाधान पहुंचाया जा सकता है।

वे लड़कियां कौन थीं जिन्होंने पढ़ाई छोड़ दी?

मैं यहां उन लड़कियों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहता हूं जो या तो कभी स्कूल गई ही नहीं या फिर जिन्होंने 12वीं तक पहुंचने से पहले ही पढ़ाई छोड़ दी। माध्यमिक स्कूलों में नामांकन में आई कमी को दूर करने के लिए इस समूह को समझना और उन्हें सहयोग करना बेहद जरूरी है। अतः 12वीं से पहले स्कूल छोड़ने वाली लड़कियों के सही आकलन के लिए इस विश्लेषण में केवल 18 से 19 वर्ष तक कि लड़कियों को ही शामिल किया गया है। 18 से 19 वर्ष तक आते–आते एक–तिहाई से ज्यादा लड़कियां या तो कभी स्कूल गई ही नहीं होती हैं (4.4 प्रतिशत) या 12वीं में पहुंचने से पहले स्कूल छोड़ चुकी होती हैं (22.2 प्रतिशत)। वे लड़कियां जो कक्षा 12 तक पहुंच नहीं पाईं उनमें से ज्यादातर निम्न आय वर्ग और ग्रामीण क्षेत्रों से आती थीं। 16 प्रतिशत अनुसूचित जाति से थीं। इसका स्तर राज्यों के अनुसार अलग–अलग था। देश के उत्तर–मध्य हिस्से में स्थिति चिंताजनक थी। मध्य प्रदेश और उड़ीसा की आधी लड़कियां 12वीं तक नहीं पहुंच पाईं। इनमें से 35 प्रतिशत लड़कियों के पिता कभी स्कूल नहीं गए थे। जबकि वे लड़कियां जिन्होंने अपनी पढ़ाई जारी रखी, उनमें से केवल 15.6 प्रतिशत के पिता ही स्कूली पढ़ाई से वंचित रहे थे। माताओं की शिक्षा के स्तर में विसंगति और भी ज्यादा थी।

क्या है जो लड़कियों को 12वीं कक्षा तक पहुंचने से रोकता है?

वित्तीय समस्या (38 प्रतिशत)

लड़कियों के पढ़ाई छोड़ने के पीछे जो कारण सबसे आम थी वो थी उनके माता–पिता की आर्थिक समस्या। इसका मतलब या तो यह था कि वे अपनी बेटियों की पढ़ाई, उनकी किताबों और आने–जाने का खर्च वहन नहीं कर सकते थे। या फिर वे चाहते थे कि उनकी बेटियां उनकी वित्तीय तौर पर सहायता करें। 45 प्रतिशत लड़कियां जो 12वीं तक नहीं पहुंच पाईं, ने बताया कि वे कोई न कोई वैतनिक कार्य कर रही थीं।

सामाजिक मानदंड (24 प्रतिशत)

स्कूल छोड़ने वाली हर चार में से एक लड़की ने इसका कारण लड़कियों को लेकर समाज की भेदभाव वाली सोच को बताया। इसमें घर का काम करना, छोटे भाई–बहनों की देखभाल करना या लड़कियों की शिक्षा को लेकर समुदाय में बनाए गए मानदंडों का पालन करना शामिल है। इन लड़कियों में से 61 प्रतिशत ने माना कि उनके समुदाय के लड़कों के पास शिक्षा के लिए बेहतर संभावनाएं मौजूद हैं। और केवल 10 प्रतिशत ने ही कहा कि उनके समुदाय के लड़के और मर्द लड़कियों के जितना ही घर का काम कर सकते हैं।

स्वास्थ्य एवं परिवार की चुनौतियां (20 प्रतिशत)

पांच में से एक लड़की ने 12वीं तक की पढ़ाई पूरी नहीं कर पाने के पीछे बीमारी या लाचारी (अपनी या परिवार के किसी सदस्य) को

SCHOOL EDUCATION WORRY

	2015-16		2016-17		2017-18	
State	Primary	Secondary	Primary	Secondary	Primary	Secondary
Arunachal Pradesh	10.82	17.11	23.3	28.1	8.1	19
Assam	15.36	27.06	5.6	27.6	10.1	33.7
Manipur	9.66	14.38	16.8	21.1	3.4	5.9
Meghalaya	9.46	20.52	17.7	28.1	1.7	17.5
Mizoram	10.10	21.88	15.4	30.7	8	19.7
Nagaland	5.61	18.23	21	31.3	4.6	13.2
Tripura	1.28	28.42	4.4	29.8	0.9	27.2

Primary — classes I to V, **secondary** — classes IX and X; all dropout figures in percentage

फरवरी 2020 को राज्यसभा में प्रस्तुत आंकड़े।

जिम्मेदार बताया। इसके अलावा प्रवास, माता–पिता का मौजूद न होना या कोई आपातकाल स्थिति भी शामिल रहे।

स्कूल तक पहुंच (15 प्रतिशत)

इन लड़कियों ने कहा कि उनके घर के पास किसी अच्छे स्कूल के नहीं होने के कारण वे आगे की पढ़ाई नहीं कर पाईं। इनमें से 90 प्रतिशत लड़कियां ग्रामीण क्षेत्रों से थीं। असल में, बड़ी होने के साथ ही लड़कियों को अपने पड़ोस में अच्छा स्कूल मिलने की संभावना कम होती जाती है।

पढ़ाई से अनिच्छा (11 प्रतिशत)

स्कूल छोड़ चुकी लड़कियों में से 6 प्रतिशत ने कहा कि वे आगे की पढ़ाई के लिए इच्छुक नहीं थीं। 5 प्रतिशत ने इसलिए स्कूल छोड़ दिया क्योंकि वे परीक्षा में फेल हो गई थीं या उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ रही थी।

विवाह (4 प्रतिशत)

18 से 19 वर्ष की वे लड़कियां जिन्होंने पढ़ाई छोड़ दी थी, उनमें से 15 प्रतिशत की शादी हो चुकी थी। हालांकि केवल 4 प्रतिशत ने ही पढ़ाई छोडने के पीछे सगाई या शादी को कारण माना।

100 प्रतिशत लड़कियों को स्कूल पहुंचाने का मार्ग

कक्षा 12 में सभी लड़कियों का नामांकन करवाने के लिए उन तक पहुं. चना होगा जो संघर्ष कर रही हैं। निम्न आय वर्ग की लड़कियां, ग्रामीण इलाकों के कम पढ़े–लिखे परिवारों की लड़कियां, खासकर राजस्थान, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उड़ीसा। इससे खतरे में जा चुकी लड़कियों को भी मजबूत सहयोग और आवासन मिल सकेगा, जिसमें स्वास्थ्य चुनौतियों या विकलांगता को झेल रही लड़कियां, आपातकालीन स्थिति में फंसी या प्रवासी परिवारों की बच्चियां शामिल हैं। स्कूल छोड़ चुकीं ज्यादातर लड़कियों ने कहा कि छात्रवृत्ति, नकद हस्तांतरण तथा सामा. जिक मानदंडों में बदलाव लड़कियों की शिक्षा के लिए एक मजबूत वातावरण के निर्माण में मददगार साबित होंगे। साथ ही हम ग्रामीण इलाकों में माध्यमिक स्कूलों की संख्या बढ़ाने की बात भी करेंगे जैसा कि प्राथमिक स्कूलों के लिए सर्वशिक्षा अभियान के तहत किया गया था।

श्रोतः India Development Review

बाल विवाह

जहां आई बाढ़, वहां बढ़े बाल विवाह

मधुलिका खन्ना
निष्ठा कोचर

(लेखिकाएं जॉर्जटाउन विश्वविद्यालय के अर्थशास्त्र विभाग में पीएच.डी. की प्रत्याशी हैं)

पिछले दिनों जब आर्थिक मंदी और कोविड–19 संकट भारतीय मीडिया में छाया हुआ था, तब दो और खबरें भी कहीं–कहीं दिख रही थीं: लड़कियों के विवाह की आयु बढ़ाकर 21 वर्ष करने का प्रस्ताव तथा पूर्वी भारत में बाढ़। हालांकि 2006 में बाल विवाह अधिनियम के पारित होने के बाद से देश में बाल विवाह की दर 38.69 प्रतिशत से घटकर 16.1 प्रतिशत तक रह गई है, फिर भी पूर्वी भारत के कई हिस्सों में इसकी मौजूदगी बनी हुई है। करीब 30 प्रतिशत बाल विवाह इस क्षेत्र के केवल चार राज्यों में ही दर्ज किए जाते हैं– बिहार, झारखंड, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल। इसका मतलब है कि बच्चों के विवाह को लेकर लागू कानूनी प्रावधान इन राज्यों में ठीक ढंग से प्रभावी नहीं हो पाते हैं। समान रूप से, बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों की संख्या भी लगातार बढ़ती जा रही है।

हम पहले ही इस बात पर चिंता जाहिर कर चुके हैं कि प्राकृतिक आपदाएं, जो आर्थिक विनाश लेकर आती हैं, बाल विवाह की दर को बढ़ा सकती हैं। प्राकृतिक आपदाओं और छोटी उम्र में विवाह की घटनाओं के बीच संबंध को जानने के लिए हम 2008 के विनाशकारी कोसी बाढ़ पर ध्यान केन्द्रित करते हैं। 18 अगस्त, 2008 को नेपाल के सुनसरी जिले के कुशहा गांव में कोसी नदी अपने उस पुराने मार्ग पर फूट पड़ी जिसे उसने दो सौ साल पहले ही छोड़ दिया था। अपने पुराने मार्ग पर 100 किलोमीटर आगे बढ़ते ही कोसी की धार में पूरा उत्तर बिहार डूब गया। अररिया, मधेपुरा, सहरसा, सुपौल और पूर्णिया के 1000 से ज्यादा गांव कोसी में समा गए। दस लाख से ज्यादा लोग अस्थायी रूप से आश्रयहीन हो गए तो कम से कम बीस लाख लोग इससे सीधे तौर पर प्रभावित हुए। 4,40,000 से ज्यादा लोग चार महीने तक राहत कैंपों में शरण लिए रहे और दिसम्बर 2008 तक अपने घरों तक लौट पाए। हालांकि इसमें मरने वालों की संख्या कम ही रही (527, जो बिहार की कुल जनसंख्या का 0.005 प्रतिशत था) लेकिन इसने जो आर्थिक क्षति पहुंचाई उसकी भरपाई आज तक नहीं हो पाई है। अनुमानित नुकसान 5935 मिलियन का रहा (134.9 मिलियन डॉलर), जो उस साल के कुल घरेलू उत्पाद का 0.5 प्रतिशत तक था। तत्कालीन प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने उस घटना को ''प्राकृतिक आपदा'' करार दिया था।

शादी के समय पर कोसी की बाढ़ के असर को देखने के लिए हम राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के चौथे दौर पर नजर डालेंगे और बाढ़ के संदर्भ में उसके स्थानिक एवं अस्थायी प्रकार को देखेंगे। इसके तहत विवाह की आयु पर बाढ़ के प्रभाव को देखने के लिए बाढ़ग्रस्त और गैर बाढ़ग्रस्त जिलों में 2001 से जुलाई 2008 के बीच (जब कोई भी समूह बाढ़ग्रस्त नहीं था) हुए बाल विवाह की दर को देखा गया है। इसके साथ ही सितम्बर 2008 से 2015 के बीच उन्हीं इलाकों में हुए बाल विवाह की दर का आकलन किया गया। इन वर्षों के दौरान बाढ़ग्रस्त क्षेत्रों में रहने वाले लोगों ने भीषण आर्थिक संकट झेला था। अगर हम मान लें कि बाढ़ के नहीं होने पर इन दोनों समूहों में शादी के समय में कोई परिवर्तन नहीं आया था तो कोसी की बाढ़ के असर को जाना जा सकता है। नमूने के तौर पर 18,797 औरतों और 3,033 मर्दों को लिया गया जिनकी शादी बाढ़ के 7 साल पहले 2001 और 7 साल बाद 2016 के बीच हुई थी। महत्वपूर्ण बात ये थी कि कोसी बाढ़ और शादी के समय के बीच के संबंध की वैधता के लिए, प्रभावित क्षेत्र ने इससे पहले 50 के दशक में कोसी के दोनों किनारों पर बांध के निर्माण के बाद से कई दशकों तक भीषण बाढ़ का संकट नहीं झेला था।

अपने अध्ययन में हमने पाया कि कोसी की बाढ़ ने लड़कों और लड़कियों दोनों की शादी की आयु को कम कर दिया। इसकी वजह से लड़कों की उम्र में 6.9 प्रतिशत तथा लड़कियों की उम्र में 3.6 प्रतिशत की कमी आई। हमने ये भी पाया कि ये नतीजे बाढ़ आने के ढाई साल के भीतर संचालित हैं। बाल विवाह की दर उन जिलों में ज्यादा बढ़ी जो बाढ़ से सबसे ज्यादा प्रभावित हुए थे। ऐसा संभवतः इसलिए हुआ ताकि लड़के वालों को जल्दी से जल्दी दहेज की रकम मिल जाए ताकि वे अपने आर्थिक संकट से उबर सकें। इसलिए उन्होंने अपने बेटे की शादी कम उम्र में ही कर दी। चूंकि शादी के लिए लड़कियों का लड़कों से छोटा होना जरूरी होता है, इसलिए लड़कियों का विवाह और भी कम उम्र में कर दिया गया। इस तरह लड़कों की आयु 10 महीने और लड़कियों की उम्र 4.5 महीने तक कम हो गई।

इस स्पष्टीकरण के समर्थन में हमने यह पाया कि हिंदू परिवारों पर कोसी की बाढ़ का असर अधिक था; दहेज़ लेन–देन की परंपरा इन परिवारों में ज्यादा सक्रिय है। इसी प्रकार, बाढ़ के द्वारा बाल विवाह पर असर भूमिहीन परिवारों पर ज्यादा है; इन परिवारों को आपदा

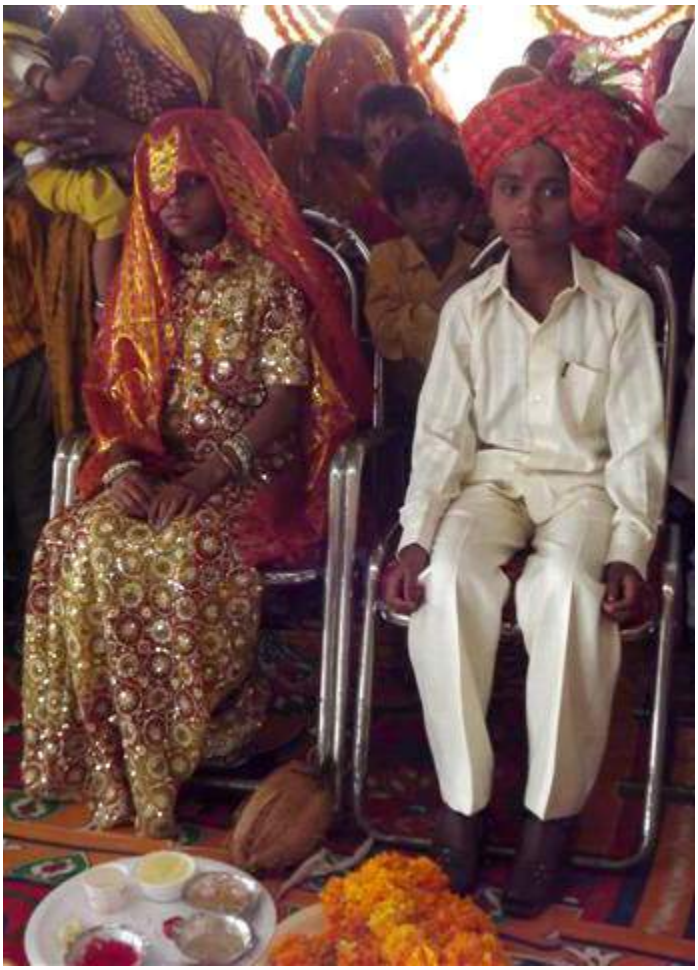

के बाद निर्वाह करने के लिए ज्यादा मुश्किल हुई होगी। हम यह भी दर्शाते हैं कि बाढ़ का असर स्कूल बिल्डिंग पर और स्कूल भर्ती पर नहीं पड़ा, जिससे यह पक्का हो जाता है कि बच्चों के स्कूल छोड़ने के कारण बाल विवाह में वृद्धि नहीं हुई। कोसी की बाढ़ के कारण लैंगिक अनुपात में आए परिवर्तन का कोई साक्ष्य भी नहीं मिला है, जिससे कि इस स्पष्टीकरण को रद्द किया जा सके कि हमारे मुख्य निष्कर्ष भू–जनसांख्यिकीय परिवर्तनों पर निर्भर करते हैं।

इन परिणामों से पता चलता है कि प्राकृतिक आपदाओं से जुड़े आर्थिक नुकसान की प्रतिक्रिया में बाल विवाह एक महत्वपूर्ण प्रतियोगी तंत्र हो सकता है। अगर निर्णय लेने वाले माँ–बाप दीर्घकालीन परिणामों पर विचार नहीं करते तो बाल विवाह के और भी दुष्प्रभाव हो सकते हैं। उदाहरण के लिए हमने पाया कि कोसी की बाढ़ ने विवाहित पुरुषों और महिलाओं के बीच माध्यमिक स्कूल की पूर्णता की दर घटा दी। हमें महिलाओं के आर्थिक परिणामों पर बाढ़ के विप. रीत प्रभाव का भी प्रमाण मिला है जहाँ महिलाओं के काम करने की संभावना कम हो गई है, और उनके पास अपना धन होने की संभावना कम हो गई है। इस प्रकार के पैटर्न मौजूदा साहित्य से मेल खाते हैं कि जल्दी शादी होने से शिक्षा, स्वास्थ्य, काम और उनके बच्चों की मानव पूँजी जैसी महिलाओं के लिए कल्याणकारी गतिविधियों के विभिन्न पक्षों में कमी आ जाती है। इसलिए आर्थिक आघात के आलोक में छोटी उम्र की शादी से यदि माता–पिता के दृष्टिकोण में उचित भी हो, इसके कारण युवा जोड़े पर खास तौर पर महिला पर दीर्घकालीन दुष्प्रभाव हो सकते हैं।

इस अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि विवाह की परंपरा एक ऐसे चौनल की तरह है, जिसके माध्यम से आपदाओं का महिलाओं पर दीर्घकालीन स्थायी प्रभाव पड़ सकता है। नीतिगत प्रतिक्रियाओं पर ऐसी सोच जिसके कारण बाल विवाह और प्राकृतिक आपदाओं को अलग कर दिया जाए, आज उस समय खास तौर पर महत्वपूर्ण हो जाती है, जब पूर्वी भारत बार–बार बाढ़ के प्रकोप से जूझ रहा हो। इसके अलावा, कोविड–19 की महामारी के दौरान आजीविका के नुक्सान के कारण खास तौर पर पहले से ही अनेक गरीब युवा लोग जल्दी शादी करने के लिए मजबूर हो गए हैं। कुछ रिपोर्टों से पता चलता है कि पिछले कुछ महीनों में बाल विवाह की वारदातों में वृद्धि हुई है। नीतिगत दृष्टि से यह पहचानना ज़रूरी है कि यदि आपदा बीमा या कम लागत वाला ऋण आसानी से उपलब्ध हो जाता है तो प्रभावित परिवार के पास दहेज की प्रथा के अलावा भी उपाय रहेगा जिससे आर्थिक आघात झेलने के बाद निर्वाह किया जा सके ताकि प्राकृतिक आपदाओं और बाल विवाह के बीच के संपर्क सूत्र को कमज़ोर हो जाए।

श्रोतः https://casi.sas.upenn.edu

एक नजर

- 2011 की जनगणना में पाया गया कि उत्तरी और पश्चिमी राज्यों के शहरी क्षेत्रों में आज भी लिंग परीक्षण सबसे ज्यादा होता है।
- 2016 में हुए एक अध्ययन के मुताबिक, भारत दुनिया में सबसे ज्यादा बालिका भ्रूण हत्याओं वाले देशों में से एक है।
- एक वैश्विक अध्ययन में बताया गया कि दुनिया भर में हर साल 1.5 मिलियन बालिका भ्रूणों को लड़के की चाह में मार दिया जाता है।

- एक रिपोर्ट के मुताबिक, बालिका शिक्षा में गुजरात 21 राज्यों में 20वें स्थान पर है।
- भारत में स्त्रियों की साक्षरता दर 65.46 प्रतिशत है जो विश्व औसत 79.7 प्रतिशत से कम है।
- दुनिया के 796 मिलियन निरक्षर लोगों में दो–तिहाई महिलाएं हैं।
- वैश्विक आंकड़ों के मुताबिक, केवल 39 प्रतिशत ग्रामीण लड़कियां ही माध्यमिक स्कूल जा पाती हैं जो लड़कों (45) के मुकाबले कम है।

- नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के मुताबिक, 2015 में कम से कम 34,651 बलात्कार के मामले दर्ज किए गए थे।
- इंडियन एक्सप्रेस में 2015 में प्रकाशित एक आलेख के अनुसार, पिछले 3 सालों में दहेज के 24,771 मामले आए।
- इंडियन एक्सप्रेस की रिपोर्ट के अनुसार, देश में 30 प्रतिशत महिलाओं की शादी 18 साल से कम आयु में हुई।
- 2015 में, गांवों में स्कूल जाने योग्य 3.7 मिलियन लड़कियां स्कूलों से दूर थीं। उन्होंने 4 साल कम शिक्षा पाई।

करमटोली, रांची के सरकारी माध्यमिक विद्यालय में शौच के लिए पानी इकट्ठा करतीं छात्राएं। *फोटो श्रोतः द टेलीग्राफ ऑनलाइन*

मासिक धर्मः सिर्फ नैपकिन काफी है!

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश के 53 स्लम इलाकों और 159 गांवों में 2579 औरतों और लड़कियों पर किए गए अध्ययन के अनुसार, केवल 7 प्रतिशत लड़कियां और महिलाएं ही सैनेटरी पैड का इस्तेमाल करती हैं।

मासिक धर्म से जुड़ी भ्रांतियों और शौचालय न होने के कारण बड़ी संख्या में लड़कियां स्कूल से ड्रॉप आउट कर जाती हैं जिसके कारण देश के कुल सकल उत्पाद में 100 बिलियन डॉलर से अधिक का नुकसान होता है।

गांवों में धड़ल्ले से सेनेटरी पैड बांटे जा रहे हैं जिनके निबटान के बारे में न तो बताया जाता है और न ही वे जैविकीय पदार्थों से बने होते हैं। इसकी वजह से पर्यावरण प्रदूषण की गंभीर समस्या का सामना करना पड़ सकता है।

समाजशास्त्र में स्नात्कोत्तर अनुपमा शुक्ला मासिक धर्म को 'गंदा' समझने और उन दिनों में 'भगवान से अलग रहने' के अंधविश्वास पर विश्वास रखती हैं। वे यह भी मानती हैं कि अगर इन मान्यताओं की अनदेखी की गई तो प्राकृतिक आपदाएं आएंगी। जिस देश में 355 मिलियन लड़कियां और औरतें मासिक धर्म से गुजरती हों, वहां इस तरह की सोच और उपेक्षा प्रबल है। वो भी संत कबीर नगर में लड़कियों के एक कॉलेज में प्रिंसिपल होते हुए शुक्ला जैसी औरतों में व्याप्त होना आक्रामक हद तक खतरनाक है। शुक्ला जब ये कहती हैं कि उन दिनों में लड़कियों को कॉलेज आने से बचना चाहिए, तो वे अपनी इस सोच को अनंत दूरी तक पहुंचा देती है, लेकिन साथ ही यह सोच इस बात का भी संकेत देती है कि हम मानव विकास पर होने वाले बड़े दुष्परिणामों की किस प्रकार अनदेखी कर रहे हैं। कई सारे अध्ययनों ने ये बताया है कि– 23 प्रतिशत लड़कियां मासिक धर्म शुरू होते ही स्कूल छोड़ देती हैं, 31 प्रतिशत महिलाएं इस दौरान अपने कार्यदिवस के 2.2 दिन छोड़ देती हैं, हर साल लड़कियां अपने स्कूल के दिनों में से 20 प्रतिशत में केवल मासिक धर्म और उससे होने वाली परेशानियों के कारण अनुपस्थित रहती हैं और मासिक धर्म के दौरान हाइजीन का ध्यान नहीं रखने के कारण प्रजनन संबंधी संक्रमण की दर में 70 प्रतिशत तक का इजाफा हुआ है।

पूजा अवस्थी

लखनऊ स्थित एक प्रगतिशील पत्रकार

मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ और उत्तर प्रदेश के 53 स्लम और 159 गांवों की 2579 लड़कियों और महिलाओं पर किए गए एक छोटे से अध्ययन में पाया गया कि 89 प्रतिशत औरतें एवं लड़कियां मासिक धर्म के दौरान कपड़े का इस्तेमाल करती थीं। उनमें से आधी औरतें उसी कपड़े को एक से अधिक बार के पीरियड में भी इस्तेमाल करती थीं। 2 प्रतिशत औरतें सूती ऊन का प्रयोग करती थीं तो वहीं 2 प्रतिशत औरतें राख का इस्तेमाल करती थीं। केवल 7 प्रतिशत औरतें एवं लड़कियां ही सेनेटरी पैड का प्रयोग करती थीं। सबसे परेशान करने वाली बात ये थी कि जिन 63 प्रतिशत लड़कियों की पहुंच शौचालय तक थी, उनमें से 20 प्रतिशत ने मासिक धर्म के दौरान इसका इस्तेमाल इसलिए नहीं किया क्योंकि उन्हें दाग लगने का डर था। जबकि पांच में से दो लड़कियों को पीरियड शुरू होने तक इसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी। जिन्हें थोड़ी–बहुत जानकारी थी भी, उनमें से केवल 16 प्रतिशत को ही इसके बारे में स्कूल में बताया गया था।

मासिक धर्म के दौरान होने वाली मुश्किलों और असुविधाओं के कारण लड़कियों के बड़ी संख्या में स्कूल से ड्रॉप आउट करने से देश की जीडीपी को 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक का नुकसान होता है। स्कूल जल्दी छोड़ देने से माता–पिता उनका विवाह भी जल्दी करा देते हैं, जिसके बाद कम उम्र में गर्भधारण करने से जच्चा और बच्चा दोनों के स्वास्थ्य पर बुरा असर होता है। ज्यादा से ज्यादा लड़कियों के स्कूल जाने का अर्थ है जेंडर समानता की ओर बढ़ना और इस प्रकार गरीबी का उन्मूलन करना। इसके अलावा, पढ़ी–लिखी मांएं बेहतर मातृ और शिशु स्वास्थ्य में सहायक होती हैं जो अंततः मिलेनियम डेवलपमेंट के लक्ष्य की ओर बढ़ने में मददगार साबित होती हैं।

इस पिछड़ेपन को दूर करने के लिए, यूपी सरकार ने एक महत्वाकांक्षी योजना शुरू की, किशोरी सुरक्षा योजना, जिसके तहत हर महीने सरकारी और सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में कक्षा 6 से 12 तक की लड़कियों के बीच 10 सेनेटरी नैपकिन वाले पैकेट का वितरण किया जाएगा। हालांकि इस योजना में उन लड़कियों की पूरी तरह से उपेक्षा की गई जो स्कूल छोड़ चुकी थीं या जो गैर सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों में पढ़ती थीं।

लखनऊ स्थित संगठन वात्सल्य की संस्थापिका नीलम सिंह कहती हैं कि लड़कियों को सेनेटरी नैपकिन के सही इस्तेमाल के बारे में भी बताया जाना चाहिए और इसके लिए सही माहौल का निर्माण किया जाना चाहिए। वे कहती हैं कि केवल सेनेटरी नैपकिन बांट देने से भर से समस्या कैसे दूर हो सकती है, जबकि स्कूलों में शौचालय ही नहीं हैं और जहां शौचालय हैं वहां उनमें पानी नहीं है। उत्तर प्रदेश के स्कूलों में 2013 में हाइजीन और स्वच्छता की स्थिति पर चौथे दक्षिण एशियाई कांफ्रेंस के फॉलो अप से प्राप्त आंकड़ों के मुताबिक, यूपी के 6 जिलों के 182 स्कूलों में हर 145 बच्चे पर एक शौचालय था जबकि लड़कियों के लिए यह 301 पर एक था!

पर्यावरण संबंधी कीमत

बिना जागरूकता के सेनेटरी नैपकिन बांट देने भर से कुछ भी हासिल नहीं होगा, इसके विपरीत

जरूरी आधारभूत संरचना के अभाव में नैपकिन का सही निबटान नहीं होने से पर्यावरण को भी भारी नुकसान हो सकता है। कम कीमत के सेनेटरी पैड बनाने वाले संगठन 'गूंज' की सह संस्थापिका मीनाक्षी गुप्ता बताती हैं कि कपड़ा एक ऐसी चीज है जो हर औरत के लिए सुविधाजनक है और वो इसके इस्तेमाल से परिचित हैं। हम बस उन्हें एक सुरक्षित और ज्यादा साफ तरीके से कपड़े के इस्तेमाल के बारे में बताते हैं। इस समय जो सेनेटरी पैड बनाए जा रहे हैं, वे बायोडिग्रेडेबल नहीं होते हैं और भारत के गांवों में इनका इतनी तेजी से पहुंचना बड़े पर्यावरणीय खतरे को आमंत्रण दे सकता है। कपड़े या बायोडिग्रेडेबल उत्पादों का निर्माण या तो बहुत कम संख्या में हो रहा है या अभी परीक्षण के स्तर पर ही है।

तमिलनाडु स्थित विश्वप्रसिद्ध कम कीमत के सेनेटरी नैपकिन निर्माता यूनिट के अगुआ अरुणाचलम मुरुगनाथम कहते हैं, ''आसानी से उपलब्धता, जागरूकता और सस्ती कीमत सबसे मुख्य बिंदु हैं। बड़ी कंपनियां जो पैड का निर्माण करती हैं, उनके केन्द्र में जींस पहनने वाली महिलाएं होती हैं, गांवों की औरतों पर उनका कोई ध्यान नहीं होता है।'' इसका समाधान देते हुए वे कहते हैं कि बायोडिग्रेडेबल, कम कीमत का पैड जिसका निर्माण और बिक्री दोनों औरतों द्वारा ही किया जाता हो, सबसे उपयुक्त तरीका है। ये महिलाएं मासिक धर्म के दौरान स्वच्छता के प्रचार की सबसे बड़ी प्रवक्ता होती हैं। जैसे–जैसे बड़े पैमाने पर बनने वाले पैड से होने वाले नुकसान के बारे में पता चलेगा, महिलाएं चुपचाप अपने ब्रांड को बदलने लगेंगी। अरुणाचलम कहते हैं कि खेती और वस्त्र निर्माण के बाद सेनेटरी नैपकिन का निर्माण आजी. विका का तीसरा सबसे बड़ा विकल्प बनने वाला है।

भस्मक यंत्रों के जरिये मासिक धर्म के दौरान बनने वाले कचरे के निबटान की योजना दिसम्बर 2013 से ही सरकार के एजेंडे में है। निर्मल भारत अभियान के दिशा–निर्देशों में कहा गया है, ''स्कूलों, महिलाओं के सामुदायिक सेनिटरी काम्प्लेक्सों में, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा गांवों में भी अन्य जरूरी स्थलों पर भस्मक यंत्रों की स्थापना की जाएगी।'' बाद में स्वच्छ भारत अभियान में भी ऐसी ही बात कही गई लेकिन सभी कागजों पर ही सिमट कर रह गए।

श्रोतः http://indiatogether.org

अपने हाथों से बनाए शौचालय के बाहर पति के साथ रायमुनि।

श्रोतः यूनिसेफ

झारखंड में 'रानी मिस्त्री' बना रही हैं शौचालय

यूनिसेफ की 2013 की एक रिपोर्ट में बताया गया कि ज्यादातर लड़कियों को उनकी मांएं पीरियड के दौरान स्कूल जाने से मना कर देती थीं क्योंकि वहां शौचालय नहीं थे। अस्सी प्रतिशत लड़कियों को पीरियड के दौरान के कपड़ों को साफ रखने के महत्व के बारे में भी पता नहीं था। हालांकि वक्त के साथ इस स्थिति में बदलाव आया है और अब झारखंड सरकार ने शौचालयों के निर्माण के लिए खुद औरतों को प्रशिक्षित करना शुरू किया है और उन्हें 'रानी मिस्त्री' का नाम दिया गया है। इस कार्यक्रम की मदद से राज्य को न केवल खुले में शौच से मुक्ति मिली है बल्कि इसने 55 हजार औरतों को भी सशक्त बनाया है जो अब शौचालय की मदद से अपनी अगली पीढ़ी को स्वस्थ और सुरक्षित बना रही हैं।

रायमुनि 28 साल की हैं और अपनी बेटी और पति के साथ रहती हैं। उसने अब से पहले कभी घर से बाहर जाकर काम नहीं किया था। लेकिन रानी मिस्त्री का प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद वे घरों में शौचालय का निर्माण करने में सक्षम हो सकी हैं। वे कहती हैं कि मासिक धर्म के दौरान उन्हें घर से बाहर निकलने में डर लगता था। इससे जुड़ी परंपरावादी रोक–टोक और सोच को लेकर वे सहमी रहती थीं। लेकिन रानी मिस्त्री बनकर शौचालयों का निर्माण करने से अब उन्हें इसका महत्व समझ में आने लगा है। पीरियड के दौरान लड़कियों के स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए भी शौचालय कितना जरूरी है, इसकी भी उसे समझ आ गई है और इसीलिए उसने अन्य कई रानी मिस्त्रियों का समूह बनाकर इस विषय पर चर्चा का आरंभ किया है।

विज्ञान

कहां गईं विज्ञान की सब लड़कियां!

2017–18 के आंकड़े बताते हैं कि गणित, इंजीनियरिंग और मेडिसिन के लिए नामांकन में लड़कियों की संख्या लड़कों से कहीं अधिक थी। यहां तक कि पश्चिमी देशों की तुलना में डॉक्टरेट के लिए नामांकन कराने वाली लड़कियों की संख्या 45 प्रतिशत अधिक थी।

ये परिवर्तन सामाजिक हैं और इसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भ हैं। एक विसित होती अर्थव्यवस्था जिसकी महत्वाकांक्षाएं वैश्विक हैं, के लिए जरूरी है कि भारत अपने वैज्ञानिकों की तकनीकी, विकास और ज्ञान संबंधी जरूरतों को पूरा करे।

ऐसी महिलाओं की दर का भी पता लगाना होगा जो अपनी पीएचडी को पूरा करने के बाद भी शोध कार्य छोड़ देती हैं। इन आंकड़ों से देश में प्रशिक्षित वैज्ञानिक प्रतिभाओं का पता लग सकेगा। पोस्ट–डॉक्टरेट पदवियों को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि काम करने में लचीलापन लाया जा सके।

2018 में डोना स्ट्रिकलैंड ने, दो अन्य लोगों के साथ भौतिकशास्त्र का नोबेल पुरस्कार जीता था। इस विषय में यह प्रतिष्ठित पुरस्कार पाने वाली पिछले 55 वर्षों में वे पहली महिला थीं। मौका बहुत खुशी का था लेकिन चिंता का भी क्योंकि इसने वैश्विक स्तर पर विज्ञान के क्षेत्र में महिलाओं के हाल को उजागर कर दिया था। जाहिर है कि भारत की स्थिति और भी खराब होगी। ऐसा नहीं है कि यहां लड़कियां विज्ञान को उच्च शिक्षा के लिए चुनती नहीं हैं लेकिन करियर के तौर पर इस विषय को अपनाने और शोध एवं अनुसंधान के क्षेत्र में आगे ले जाने में पिछड़ जाती हैं। 2004 में, इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी ने विज्ञान के क्षेत्र में लड़कियों के करियर की स्थिति की समीक्षा करने और इस क्षेत्र में उनकी संख्या बढ़ाने के उपाय सुझाने के लिए एक कमिटी गठित की। कमिटी ने पाया कि जो लड़कियां विज्ञान को लेकर आगे बढ़ती भी हैं वे ज्यादातर स्कूलों या महाविद्यालयों में शिक्षण कार्य तक ही रुक जाती हैं। शोध अथवा अनुसंधान के क्षेत्र में बहुत ही कम लड़कियां आगे जा पाती हैं। 2017–18 के आंकड़े बताते हैं कि गणित, इंजीनियरिंग और मेडिसिन की पढ़ाई के लिए नामांकन में लड़कियों की संख्या लड़कों से कहीं अधिक थी और क्रमशः 61.2 प्रतिशत, 61.2 प्रतिशत और 57.1 प्रतिशत थी। यहां तक कि उसी अवधि में पश्चिमी देशों की तुलना में डॉक्टरेट के लिए नामांकन कराने वाली लड़कियों की संख्या 45 प्रतिशत अधिक थी। लेकिन उच्चतम स्तर की इस उपाधि को पा लेने के बाद भी वे आगे इसमें करियर नहीं बना पाती हैं। इसे देश के शीर्ष शिक्षण संस्थानों में देखा जा सकता है। बेंगलुरू स्थित इंडियन इंस्टीच्यूट ऑफ साइंस में 450 से अधिक फैकल्टी सदस्य हैं, लेकिन उनमें महिलाओं की संख्या सिर्फ 9 प्रतिशत है। आईआईटी में इनकी संख्या 12.7 प्रतिशत है जो कुछ अधिक है। इंडियन साइंस एकेडमी के कुल 279 फेलो में केवल 2 महिलाएं हैं जबकि आईएनसीए के भी कुल 112 फेलो में से 2 महिलाएं हैं।

डॉ. अनीता कुरूप

लेखिका बेंगलुरू नेशनल इंस्टीच्यूट ऑफ एडवांस्ड स्टडीज में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत हैं

महिलाओं और विज्ञान की समस्या अकेले वैज्ञानिकों की समस्या नहीं है। ये परिवर्तन सामाजिक हैं और इसके राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भ हैं। एक विकसित होती अर्थव्यवस्था जिसकी महत्वाकांक्षाएं वैश्विक हैं, जरूरी है कि भारत अपने वैज्ञानिकों की तकनीकी, विकास और ज्ञान संबंधी जरूरतों को पूरा करे। भारत को अपनी उन महिलाओं को वापस लाने की जरूरत है जिन्होंने मां बनने के बाद अपना शोध कार्य छोड़ दिया था। इससे युवा पुरुषों को भी बच्चों को संभालने की जिम्मेदारी का अहसास होगा और बच्चों का पालन–पोषण करना स्त्री–पुरुष दोनों का काम होगा। इसके अलावे उन औरतों पर भी फोकस करना होगा जो करियर और घर दोनों को संभालने के कारण भारी दबाव में होती हैं। उनके अनुभवों पर आधारित अध्ययन से भी लाभ लिया जा सकता है।

ऐसी महिलाओं की दर का भी पता लगाना होगा जो अपनी पीएचडी को पूरा करने के बाद भी शोध कार्य छोड़ देती हैं। इन आंकड़ों से देश में प्रशिक्षित वैज्ञानिक प्रतिभाओं का पता लग सकेगा। पोस्ट–डॉक्टरेट पदवियों को बढ़ाया जाना चाहिए ताकि काम करने में लचीलपन लाया जा सके। जिन औरतों को बच्चों या घरों की देखभाल करनी होती है, उनके लिए सप्ताह में तीन या पांच दिन काम करने की अनुमति होनी चाहिए। ऐसे में सरकार द्वारा वित्तपोषित कार्यक्रम इंडिया बायोसाइंस उम्मीद की किरण हो सकती है।

श्रोतः www.firstpost.com

www.amanjari.com

मंजरी

स्त्री के मन की

Sulabh International Social Service Organisation

THE OFFSETTERS (INDIA) PRIVATE LIMITED
design, pre-press and color offset printing

bansal TUTORIALS

takshila connect to the universe

COMFED Sudha

We Care IS

GYAN GANGA
ज्ञानम् भारः क्रियां विना

Limagrain

आप हमें ई–मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई–मेल भी कर सकते हैं। इस विषय में विशेष जानकारी equityasia@gmail.com पर ली जा सकती है। प्रकाशक की अनुमति के बिना पत्रिका में प्रकाशित किसी भी सामग्री का अन्यत्र इस्तेमाल करना कॉपीराइट का उल्लंघन माना जाएगा।

© : इक्विटी फाउंडेशन